

श्रीमद्भगवद्गीता

भाषाटीकासहित ।

प्रकाशक—

गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण

लक्ष्मीनारायण यन्त्रालय

मुरादाबाद.

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।







ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥



नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ १ ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता



मुरादाबादवास्तव्य

पण्डितब्रजरत्नभट्टाचार्य्येण प्रणीतया

रत्नप्रभाभाषाटीकया

समलङ्कृता

सेयम्

गणेशीलाललक्ष्मीनारायणाभ्यां

मुरादाबादनगरे

"लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालये

मुद्रापयित्वा प्रकाशिता च

तृतीयावृत्तिः, स० १९६७

ॐ

श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यम्

भाषाटीकासहितम् ॥



धरोवाच ।

भगवन् परमेशान भक्तिरव्यभिचारिणी ।
प्रारब्धं भुज्यमानस्य कथं भवति हे प्रभो ॥ १ ॥

एक समय पृथ्वी श्रीविष्णुसे पूछने लगी कि–
हे प्रभो ! परमेश्वर ! पूर्वजन्मके किये हुए कर्मों
का फल भोग रहे जो प्राणी हैं, उनको, आपकी
दृढ़भक्ति कैसे होती है ॥ १ ॥

विष्णुरुवाच ।

प्रारब्धं भुज्यमानोहि गीताभ्यासरतः सदा ।

सयुक्तः ससुखी लोके कर्मणा नोपलिप्यते॥

विष्णु कहने लगे कि–हे पृथ्वि ! पहिलेके किये हुए कर्मोंके फलों का भोगनेवाला जो प्राणी है, वह यदि सदा गीताका अभ्यास किया करे तो कर्मसे नहीं लिप्त होता और मुक्त होकर परमानन्द को पाता है ॥ २ ॥

महापापादिपापानि गीताध्यानं करोति चेत्
क्वचित्स्पर्शं न कुर्वन्ति नलिनीदलमम्बुवत् ॥ ३॥

गीताका ध्यान करने वाले को बड़े २ पाप नहीं स्पर्श करते जैसे कमलके पत्तेपर जल नहीं ठहरता ॥ ३ ॥

गीतायाः पुस्तकं यत्र यत्र पाठः प्रवर्त्तते
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि सन्निधि

जहां गीताकी पुस्तक रहती है और गीताका पाठ होता है वहां निश्चयकरके सम्पूर्ण प्रयागआदि तीर्थ रहते हैं ॥४॥

सर्वे देवाश्च ऋषयो योगिनः पन्नगाश्च ये।
गोपालागोपिकावापि नारदोद्धवपार्षदाः॥५॥
निवसन्ति सदा यत्र गीतापाठः प्रवर्त्तते।
सहायो जायते शीघ्रं यत्र गीता धृता भवेत् ६
यत्र गीताविचारश्च पठनं पाठनं श्रुतम्।
तत्राहं निश्चितं पृथ्वि निवसामि निरन्तरम् ७

हे पृथ्वि! जहां गीताका पाठ होता है वहां सब देवता, ऋषि, योगिजन, पन्नग, गोप, गोपी और नारद, उद्धव आदि परमेश्वरके पार्षद सदैव रहते हैं और जहां गीताकी पुस्तक रहती है, वहां विपत्ति पड़नेपर अकस्मात् दैविक सहाय होती है जहां गीताके अर्थका विचार होता है और गीता पढ़ी या पढ़ाई अथवा सुनाई जाती है वहां निश्चय करके मैं सर्वदा रहता हूं॥ ५॥ ६॥ ७॥

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान्पालयाम्यहम्

मैं गीताके आश्रय रहता हूं, गीता मेरा उत्तम मन्दिर है, गीताके ज्ञानके आश्रय रहकर मैं तीनों लोकोंकी पालना करता हूं ॥ ८ ॥

गीता मे परमा विद्या ब्रह्मरूपा न संशयः ।
अर्द्धमात्राक्षरा नित्यास्वानिर्वाच्यपदात्मिका
चिदानन्देन कृष्णेन प्रोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम्
वेदत्रयी परानन्दा तत्त्वार्थज्ञानसंयुता॥ १

अपना नहीं कहनेके योग्य जो ब्रह्मपदका ज्ञ है, उस करके युक्त यह ब्रह्मरूप गीता मेरी पर विद्या है, इसका एक पद या आधापद अर्द्ध एक अक्षर पढ़नेसे परमपद मिलता है इसमें संश नहीं है । चिदानन्दघन कृष्णने अपने श्रीमुखसे अर्जुनप्रति तत्त्वार्थज्ञानयुक्त परमानन्दमय वेदत्रयीका सारांश इस गीतामें कहा है ॥ ९ ॥ १० ॥

योऽष्टादशजपे नित्यं नरोनिश्चलमानसः
ज्ञानसिद्धिं सलभते ततोयाति परांगतिम् १ १

जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर गीताके अठारह अध्यायों का पाठ करता है वह ज्ञानकी सिद्धिको पाकर परमगतिको पाता है ॥ ११ ॥

पाठेऽसमर्थः सम्पूर्णे तदर्द्धं पाठमाचरेत् ।
शतगोदानजं पुण्यं लभतेऽत्र न संशयः १२
त्रिभागं पठमानस्तु गङ्गास्नानफलं लभेत् ।
षडंशपाठात्प्राप्येत सोमयागफलं ध्रुवम् १३
एकाध्यायं तु यो नित्यं पठते भक्तिसंयुतः ।
रुद्रलोकमवाप्नोति गणो भूत्वा वसेच्चिरम् १४
अध्यायं श्लोकपादं वा नित्यं यः पठते नरः ।
मनुष्यतनुमाप्नोति यावन्मन्वन्तरं धरे ॥ १५ ॥
गीतायाः श्लोकदशकं सप्त पञ्च चतुष्टयम् ।
द्वौ त्रीनेकं तदर्द्धं वा श्लोकानां यः पठेन्नरः १६
चन्द्रलोकमवाप्नोति वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ।
गीतापाठसमायुक्तो मुक्तो न नरतामियात् १७

यदि पूरा पाठ न करसके तो आधा पाठ करे तब भी सौ गोदानका पुण्य मिलता है, इसमें संशय नहीं है । तिहाई पाठ से गङ्गास्नानका फल

मिलता है, छठाभाग पाठ करने से सोमयज्ञका फल मिलता है। जो कोई नित्य भक्तिपूर्वक एक अध्याय गीताका पाठ करता है वह रुद्रलोकमें बहुत दिनोंतक शिवका गण होकर रहता है। एक अध्याय या एक श्लोक अथवा श्लोकका एक चरण जो कोई नित्य पढ़ता है वह एक मन्वन्तर तक मनुष्ययोनिमें रहता है। गीताके दश श्लोक, सात श्लोक, पांच श्लोक, चार श्लोक, दो, तीन या एक वा आधा श्लोक पाठ करने से दश हजार वर्षतक चन्द्रलोकमें रहता है। गीताका पाठ करने वाला मुक्त होजाता है वह फिर मनुष्ययोनि में नहीं आता ॥ १२॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥

गीताभ्यासं नरः कृत्वा लभते भक्तिमुत्तमाम्
गीतेत्युच्चारसंयुक्तो म्रियमाणो गतिं लभेत्
गीतार्थश्रवणासक्तो महापापयुतोऽपि वा
वैकुण्ठं समवाप्नोति विष्णुना सह मोदते १

गीताका अभ्यास करने से उत्तम भक्ति

मिलती है, मरती बार गीताका केवल नाम लेनेसे उत्तम गति मिलती है। महापापी भी गीताका अर्थ सुननेसे पवित्र होकर वैकुण्ठको जाता है और वहां विष्णुके साथ आनन्दित होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

गीतार्थं ध्यायते नित्यं कृत्वा कर्माणि भूरिशः
जीवन्मुक्तः सविज्ञेयो देहान्ते परमं पदम् २०
गीतामाश्रित्य बहवो भूभुजा जनकादयः ।
निर्धूतकल्मषा याता गीतागीताः परं पदम् २१

अनेक कर्मोंको करके भी जो कोई गीताके अर्थको नित्य चिन्तवन करता है वह जीवन्मुक्त माननें योग्य है, क्योंकि–उसको देहके अन्तमें परमपद मिलता है देखो ! गीताका आश्रय लेकर बहुतसे जनकादिक राजा पापोंसे छूटकर गीताके ज्ञानसे परमपदको गये हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत्
वृथा पाठो भवेत्तस्य श्रमएव उदाहृतः ॥ २२ ॥

बिना इस माहात्म्यका पाठ किये जो गीताका

ाठ करता है उसका पाठ वृथा है, केवल परिश्रम
ी होताहै फल कुछ नहीं होता ॥ २२ ॥

तन्माहात्म्यसंयुक्तं गीताभ्यासं करोति यः
ततफलमवाप्नोति दुर्लभां गतिमाप्नुयात्॥

इस माहात्म्यका पाठ करके पीछे से जो
ोई गीतापाठ करता है, उसको गीतापाठका
फल और दुर्लभगति मिलती है ॥ २३ ॥

सूतउवाच ।

ाहात्म्यमेतद्गीताया मया प्रोक्तं सनातनम्
ीतादौ च पठेद्यस्तु यदुक्तं तत्फलं लभेत् २४

सूतजी (शौनकादि अठासी हजार ऋषियों
े) कहते है, कि—यह मैंने बहुत पुरातन गीता
ा माहात्म्य कहा है इसको जो कोई गीताके
हिले पढ़ता है, उसको कहा हुआ सब फल
अवश्य मिलता है ॥ २४ ॥

इतिश्रीवाराहपुराणान्तर्गतं श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यं
भाषाटीकासहितं समाप्तम् ॥

॥ श्रीः ॥



श्रीमद्भगवद्गीता

रत्नप्रभाभाषाटीका सहिता



धृतराष्ट्र उवाच—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाःपाण्डवाश्चैव किमकुर्वतसंजय॥१॥

मङ्गलाचरण ।

नुमो माधवपादाब्जौ कैवल्यपददायकौ ।
यन्मनस्कोभवत्येव तन्मयोनान्यशङ्कभाक् ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—

सञ्जय ! धर्मकर्मों के उत्पत्तिस्थान कुरुक्षेत्र

में युद्ध करनेकी कामनासे एकत्रित हुए दुर्योधना-
दिक हमारे पुत्रोंने और युधिष्ठिरादिक पाण्डवों
ने क्या किया ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच—

दृष्ट्वातुपाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजावचनमब्रवीत्॥२॥

सञ्जय बोले—

उस समय पाण्डवोंकी सेनाको व्यूहरचनासे
युद्ध करनेके अर्थ खड़ी हुई देखकर राजा दुर्योधनने
गुरु द्रोणाचार्य के निकट जाके यह वचन कहे ॥ २ ॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतींचमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

हे आचार्य ! आपके शिष्य जो द्रुपदके पुत्र
बुद्धिमान् धृष्टद्युम्न करके इस प्रकार व्यूहरचना
से युद्धके अर्थ खड़ी हुई पाण्डवोंकी इस बड़ी
भारी सेनाको तो देखो ॥ ३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥ ४॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः॥ ५॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥६॥

इस सेनामें युद्धके विषैं भीमसेन और अर्जुन की समान पराक्रमी बड़े २ धनुषधारी सात्यकि, विराट, महारथी[1] द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान और पराक्रमी काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज (कुन्ती-का पिता) मनुष्यों में श्रेष्ठ शब्य, अत्यन्त परा-क्रमी युधामन्यु, तथा अधिक बलवान् उत्तमौजा (अर्थात् पंचालदेशका राजा) सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पांचों पुत्र, यह सबही

१—जो अकेलाही वीर दशसहस्र वीरों के साथ युद्ध करसक्ता हो उसको 'महारथी' कहते हैं॥

महारथी युद्ध करने के अर्थ खड़े हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अस्माकंतुविशिष्टाये तान्निबोधद्विजोत्तम।
नायकाममसैन्यस्यसंज्ञार्थं तान्ब्रवीमिते ७

हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! हमारी सेना में जो मुख्य२ सेनापति (शूर वीर) हैं, आपको स्मरण कराने के अर्थ उन के भी नाम कहताहूं,आप सुनिये॥७॥

भवान्भीष्मश्चकर्णश्च कृपश्चसमितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्चसौमदत्तिस्तथैवच८।

एक तो आप, भीष्मपितामह, कर्ण और संग्राममें जय को प्राप्त करने वाले कृपाचार्य,अश्वत्थामा, विकर्ण तथा सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा॥८॥

अन्ये च बहवःशूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नाना शस्त्रप्रहरणाःसर्वेयुद्धविशारदाः॥९॥

इन पूर्वोक्त वीरोंके अतिरिक्त और भी विविध प्रकारके शस्त्रप्रहार करने में निपुण और युद्ध

करने में परम चतुर ऐसे अनेकों शूरवीर हैं कि--जिन्होंने मेरे हितसाधन के लिये प्राणतक देदेने का निश्चय कर लियाहै ॥ ९ ॥

अपर्याप्तंतदस्माकं बलंभीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तंत्विदमेतेषां बलंभीमाभिरक्षितम्१०

हे गुरो ! हमारी सेनाके रक्षा करनेवाले भीष्मपितामहजी हैं,तौ भी हमारी सेना बहुत(अर्थात्--ग्यारह अक्षौहिणी[1] होकर भी अपूर्ण सी है,और उन पाण्डवोंकी सेनाका भीमसेन रक्षक है, तथा उनकी सेना हमारी सेनासे न्यून(अर्थात् सात अक्षौहिणी) पर भी परिपूर्णसी दीखती है ॥१०॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवंतःसर्वएवहि ११

इसहेतु आप सब शूरवीर अपने२भागोंके अनुसार

१--एक अक्षौहिणी में २१८७० हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० अश्व और १०९३५० पदाति होते हैं ॥

समस्त अयनों[1] पर स्थित रहकर भीष्मजी ही की रक्षा करते रहें ॥ ११ ॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

तदनन्तर कुरुवंशियोंमें वृद्ध एवं परमप्रतापी भीष्मपितामहने राजा दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये सिंहनादकी समान उच्चस्वरसे गर्जना करके शंख बजाया ॥ १२ ॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

भीष्मजीके शंखनादको सुनकर उस सेनामें अनेकों शंख, भेरी, पणव[2], आनक[3] और गोमुख बाजे शीघ्रही बजने लगे, तथा उनका अतिघोर एक बड़ा शब्द होगया ॥ १३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।

१—सेनाके बलाबलको देखकर उसको उचित स्थानपर स्थित करने को 'अयन' कहतेहैं। २—ढोल। ३ नगारा ॥

माधवःपांडवश्चैवदिव्यौशंखौप्रदध्मतुः१४

तिसके अनन्तर श्वेत अश्वों करके युक्त विशाल रथ में स्थित हुए श्रीकृष्ण और पाण्डुनन्दन अर्जुन भी अपने २ दिव्य शंखों को वजानेलगे ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रंदध्मौ महाशंखं भीमकर्मावृकोदरः ॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने पाञ्चजन्य, अर्जुन ने देवदत्त और भयानक कर्मोंके करनेवाले भीमसेन ने पौण्ड्र नामके शंखको वजाया ॥ १५ ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रोयुधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्चसुघोषमणिपुष्पकौ१६॥

कुन्तीके पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नाम वाले शंखको, नकुल ने सुघोष और सहदेवने मणिपुष्पक नाम वाले शंखको वजाया ॥ १६ ॥

काश्यश्चपरमेष्वासःशिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नोविराटश्चसात्यकिश्चापराजितः १७

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्चमहाबाहुःशङ्खान्दध्मुःपृथक्पृथक्॥

विशाल धनुषधारी काशीराज, महारथी शि· खण्डी, धृष्टद्युम्न और विराट,सर्वत्र विजय को प्राप्त करनेवाला सात्यकि,द्रुपद तथा द्रौपदीके पांचोंपुत्र, एवं सुभद्रा का पुत्र महाबाहु अभिमन्यु,यह सब हे राजन् ! चारोंओरसे अपने २ शंखों को पृथक् २ बजाने लगे ॥ १७ ॥ १८ ॥

सघोषोधार्तराष्ट्राणांहृदयानिव्यदारयत् ।
नभश्चपृथिवींचैवतुमुलो व्यनुनादयन्॥१९॥

विविध प्रकारके वाद्य और शंखों के उस भी· षणनादने आकाश और भूमिको अपनी ध्वनिसे शब्दायमान् करके कौरवों के हृदयों को विदीर्ण कर दिया ॥ १९ ॥

अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वाधार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्तेशस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्यपाण्डवः २०॥

हृषीकेशन्तदावाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच-

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथंस्थापयमेऽच्युत ॥२१॥

इसके अनन्तर हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रोंको युद्ध करने के लिये उद्यतहुए देख शस्त्रोंके चलनेके समय अर्जुनने अपना गाण्डीव धनुप उठाकर श्रीकृष्ण भगवान् से यह वचन कहे। अर्जुनने कहाकि-हेश्री-कृष्ण ! अब मेरे रथको दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करो ॥ २० ॥ २१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहंयोद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मयासहयोद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे॥२२॥

अब युद्ध करनेकी कामनासे उपस्थित हुए इन योधाओं को प्रथम मैं देखलूं, कि-इस संग्राम के वीच में कौन २ मेरे संग युद्ध करेंगे ॥२२॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहंयएतेऽत्रसमागताः ।
धार्तराष्ट्रस्यदुर्वुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥२३॥

जो शूर वीर यहां दुर्बुद्धि दुर्योधन के प्रिय करनेकी इच्छा से संग्राम के बीच में युद्ध करने को आये हैं, तिन सब को मैं एकबार देखलूं॥२४॥

संजय उवाच—

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान्कुरूनिति॥

संजय बोलाकि—हे भरतवंशी राजन्! अर्जुन के इसप्रकार कहनेपर श्रीकृष्ण भगवान्ने कौरव और पांडवोंकी दोनों सेनाओंके मध्यमें भीष्म-पितामह और द्रोणाचार्य तथा समस्त राजाओं के सन्मुख अर्जुनके उत्तमरथको खड़ा करके कहा कि हे अर्जुन! इकट्ठे हुए इन कौरवों को तुम देखो॥ २४॥ २५॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थःपितॄनथपितामहान्
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखीं-
स्तथा ॥ २६ ॥

दोनों सेनाओं के बीचमें स्थितहोकर अर्जुनने दोनों सेनाओं के मध्य में पितृव्य (पिताके भाई) पितामह, आचार्य, मामा, भ्राता (भाई), पुत्र और पौत्र तथा मित्रों को ॥ २६ ॥

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्यसकौंतेयःसर्वान्वंधूनवस्थितान्

और श्वशुर, सुहृद्, एवं और भी बन्धु बान्धवों को युद्ध करने के अर्थ खड़े हुए देखकर कुंतीके पुत्र अर्जुन ने ॥ २७ ॥

कृपयापरयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

अर्जुन उवाच–

दृष्ट्वेमंस्वजनंकृष्णयुयुत्सुंसमुपस्थितम् ॥

अतिशय करुणासे युक्त होकर विषाद को प्राप्तहोके कहा। अर्जुन बोले कि हे श्रीकृष्ण! इन अपने कुटुम्बियों को युद्ध करने के लिये उद्यत हुवा देखकर ॥ २८ ॥

सीदन्तिममगात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरेमे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९॥

मेरे समस्त अंग शिथिल हुएजाते हैं,मुख सूखाजाताहै, और मेरे शरीर में कंप तथा रोमांच हुए जाते हैं ॥ २९ ॥

गाण्डीवंस्रंसते हस्तात्त्वक्चैवपरिदह्यते ।
नचशक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीवचमेमनः३०॥

गाण्डीव धनुष हाथसे गिरा जाता और सारे शरीर की त्वचामें दाह होताहै, मैं संग्राम के बीचमें खड़ाभी नहीं होसक्ता क्योंकि मेरा मन भ्रम से चलायमान होरहा है ॥ ३० ॥

निमित्तानिच पश्यामिविपरीतानिकेशव।
न चश्रेयोऽनुपश्यामि हत्वास्वजनमाहवे॥

हे केशव! मुझे समस्त शकुन विपरीत(उलटे) दीखते हैं, और अपने कुटुम्बियों को संग्राम में मारकर मैं अपना कुछ भला नहीं देखता हूं॥३१॥

न काङ्क्षे विजयंकृष्णनचराज्यंसुखानिच।
किंनोराज्येनगोविन्दकिंभोगैर्जीवितेनवा॥

हे कृष्ण! मुझे विजयकी इच्छा नहीं, और मैं राज्य तथा सुख भोगने की भी इच्छा नहीं करता, हे गोविन्द! राज्य, भोग और जीवन से भी हमारा क्या प्रयोजन है? अर्थात् मुझे राज्यादिककी इच्छा नहीं है॥ ३२ ॥

येषामर्थेकांक्षितंनोराज्यंभोगाःसुखानिच।
तइमेवास्थितायुद्धेप्राणांस्त्यक्त्वाधनानिच॥

जिनके लिये राज्य, भोग और सुखकी इच्छा

करीजाती है, वे सब बन्धु मारों और धनकी आशाको त्याग युद्ध करने के अर्थ रणमें प्राप्त हुएहैं।

आचार्याःपितरःपुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसम्बधिनस्तथा।

आचार्य, पिता, पुत्र, पितामह, मातुल(मामा) श्वशुर, पौत्र और साले तथा और भी सब संबन्धी खड़े हैं ॥ ३४ ॥

एतान्नहन्तुमिच्छामि घ्नतोपि मधुसूदन ।
अपित्रैलोक्यराज्यस्यहेतोःकिन्नुमहीकृते॥

हे मधुसूदन! चाहें यह मेरे ऊपर शस्त्रप्रहारभी करें तथापि मैं इनको त्रिलोकी के राज्य की प्राप्ति के अर्थ भी हनन करनेकी इच्छा नहीं करता तो फिर केवल पृथिवी के लिये क्या मारनेकी इच्छा करूं ॥ ३५ ॥

निहत्यधार्तराष्ट्रान्नःकाप्रीतिःस्याज्जनार्दन
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥

हे दुष्टनिकन्दन ! धृतराष्ट्र के पुत्रोंको मारकर हमको क्या प्रसन्नता होगी? यद्यपि यह आततायी[1] (दुष्ट) हैं, तथापि इनको मारनेसे हमको पाप ही होगा ॥ ३६ ॥

तस्मान्नार्हावयंहन्तुंधार्तराष्ट्रान्स्वबांधवान्
स्वजनंहिकथंहत्वासुखिनःस्याममाधव ३७

इसी कारण हे रमानाथ ! धृतराष्ट्रके पुत्र अपने बन्धुओंको हम मारने के योग्य नहीं, क्योंकि-अपने कुटुम्बियोंको मारकर हम सुखी कैसे होंगे? अर्थात्-बन्धुओं के मारने से पाप होगा और चित्त उद्विग्न रहेगा ॥ ३७ ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहेचपातकम्॥३८॥

१-जो आयुध धारण करके प्रहार करनेको उद्यत होरहाहो उसको आततायी कहते हैं, आततायी को मारनेसे पाप नहीं लगता ऐसा शास्त्रों में लिखा है ॥

यद्यपि इनका चित्त लोभ से व्याप्त होरहा है इस कारण यह कुलका नाशकरने से उत्पन्न हुए दोपको और मित्रोंसे द्वेप करनेसे क्या पातक लगताहै इस बातको नहीं देखते हैं ॥ ३८ ॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिःपापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोपं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९॥

परन्तु हे जनार्दन ! हम इस पापसे निवृत्त होनेके अर्थ सब कुछ जानकरभी कुलके नाशजनित पापसे क्यों नहीं बचें ॥ ३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मेनष्टेकुलंकृत्स्नमधर्मोभिभवत्युत ॥४०॥

हेनारायण ! कुलका विनाश होजाने से सनातन से चले आनेवाले कुलके धर्म भी नष्ट होजातेहैं, और धर्म का नाश होजाने से कठिन अधर्म कुलको घेर लेताहै ॥ ४० ॥

अधर्माभिभवात्कृष्णप्रदुष्यन्तिकुलस्त्रियः

स्त्रीषुदुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः॥४१॥

हे कृष्ण! अधर्मसे तिरस्कृत होतेही कुलकी स्त्रियों के आचरण दुष्टाचरण होजाते हैं, और स्त्रियोंके व्यभिचारिणी होजानेसे वर्णसंकर संतान उत्पन्न होती है ॥ ४१ ॥

संकरोनरकायैव[1] कुलघ्नानां कुलस्यच ।
पतन्तिपितरोह्येषांलुप्तपिंडोदकक्रियाः४२॥

वह वर्णसंकर सन्तान कुलका नाश करने वालोंको और कुलको नरकही में पहुंचाती है, क्योंकि पिंडदान और तर्पण के लुप्त होजाने से उन कुलविनाशियोंके पितर नरकही में गिरते हैं॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यंतेजातिधर्माःकुलधर्माश्चशाश्वताः

वर्णसंकर सन्तानको उत्पन्न करनेवाले कुल-

१–'कुपुत्रमासाद्य कुतो जलांजलिः' इतिस्मरणात् ॥

विनाशियों के इन पूर्वोक्त दोषों करके सनातनसे चलेआते जातिधर्म और कुलधर्म यह सब नाश होजाते हैं ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

हे असुरनिकन्दन ! हमने ऐसा सुना है कि-जिनके कुलधर्म [और जातिधर्म] विनष्ट होजाते हैं उन मनुष्यों का निरन्तर नरक में निवास होता है ॥ ४४ ॥

अहोबत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेनहन्तुंस्वजनमुद्यताः४५॥

अहो !!! हम बड़ा पाप करने के अर्थ उद्यत हुए हैं, जोकि-राज्य और सुखके लोभ से अपने बांधवोंको मारने के लिये सन्नद्ध होरहे हैं ॥४५॥

यदिमामप्रतीकारमशस्त्रंशस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रारणेहन्युस्तन्मेक्षेमतरं भवेत्४६॥

यदि हाथमें शस्त्रों को धारण करनेवाले धृत-राष्ट्र के पुत्र समर में मुझे निरस्त्र और उद्योग रहित को मारें तो मेरा बड़ाही कल्याण होजाय ॥

संजय उवाच—

एवमुक्त्वार्जुनःसंख्ये रथोपस्थउपाविशत् ।
विसृज्यसशरंचापंशोकसंविग्नमानसः॥४७॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगोनाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

संजय कहने लगे कि—

युद्धमें शोकसे उद्विग्न चित्तवाला अर्जुन इस प्रकार श्रीकृष्ण से कहकर धनुषबाणको त्यागकर रथमें तकिये के सहारे से बैठ गया ॥ ४७ ॥

इतिश्रीभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः।



सञ्जय उवाच।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदंवाक्यमुवाचमधुसूदनः॥१॥

सञ्जय कहने लगे कि—

उस समय दयासे कातरचित्तवाले और जिन के नेत्रोंमें आंसू परिपूर्ण भररहेहैं,इसप्रकार विषाद करते हुए अर्जुन से मधुसूदन श्रीकृष्णने यह वचन कहे॥ १॥

श्रीभगवानुवाच--

कुतस्त्वाकश्मलमिदंविषमेसमुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥ २॥

श्रीभगवान् बोले कि–

हे अर्जुन! नीच पुरुषों द्वारा करने के योग्य

और स्वर्ग की प्राप्तिको नाश करनेवाला तथा अपकीर्त्तिका देनेहारा यह अज्ञान तुमको ऐसे कुसमय में कहांसे प्राप्त होगया ॥ २ ॥

क्लैब्यं मास्मगमःपार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रंहृदयदौर्बल्यंत्यक्त्वोत्तिष्ठपरंतप ॥ ३ ॥

हे पार्थ ! तुम कातरभावको मत प्राप्त होओ क्योंकि यह कायरता तुम्हारे लिये सुन्दर नहीं लगती; हेशत्रुओं को सन्ताप देनेवाले ! हृदयकी तुच्छ कायरता को त्यागकर युद्ध करनेके अर्थ उठो ॥३॥

अर्जुन उवाच-

कथंभीष्ममहं संख्ये द्रोणञ्च मधुसूदन ।
इषुभिःप्रतियोत्स्यामिपूजार्हावरिसूदन ॥४॥

अर्जुन बोले-

हे मधुसूदन ! मैं संग्रामके बीचभीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के साथ बाणों से किस प्रकार

युद्ध करसक्ता हूं ? क्योंकि हे शत्रुनिकन्दन ! यह दोनों हमारे पूजनीयहैं ॥ ४ ॥

गुरूनहत्वाहिमहानुभावा-
श्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्॥ ५ ॥

महात्मा कुरुवंशियों को न मारकर संसार में भिक्षा मांगके भोजन करने से तो मेरा कल्याण है, परन्तु इन कौरवोंकी संपत्तिकी कामना करने वाले द्रोणाचार्यादिकों को मारकर रुधिरसे सनेहुए राज्य भोगोंको यहां भोगना उचित नहीं ॥ ५ ॥

न चैतद्विद्मःकतरन्नो गरीयो-
यद्वा जयेम यदिवा नो जयेयुः ।
यानेवहत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखेधार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

इस संग्राम में हम दुर्योधनादिक को जीतें, अथवा दुर्योधनादिक हमको जीतें, इन दोनों पक्षोंमें कौनसा पक्ष श्रेष्ठ है ! यह हम नहीं जानते, जिन अपने बंधुओं को मारकर हम जीवित रहने की इच्छा नहीं करते, वेही धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे सन्मुख (युद्धकरने के अर्थ) खड़े हैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः,
पृच्छामित्वां धर्म संमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे,
शिष्यस्तेऽहंशाधि मांत्वांप्रपन्नम्॥

दयाके दोषसे मेरा क्षत्रिय स्वभाव नष्ट होगया और क्या धर्म मुझे कर्त्तव्य है इसका निश्चय करने में मेरा चित्त मूढ होरहा है, इस कारण मैं आप से पूछताहूं कि जिससे मेरा अवश्यही कल्याण हो, वह मुझ से कहो ! क्योंकि-मैं आप

का शिष्य आपकी शरण में आयाहूं इस हेतु मुझे उपदेश करो ॥ ७ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं,
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥८॥

भूमिके ऊपर निष्कण्टक तथा समृद्ध राज्य अथवा देवताओं के स्वामित्व (इन्द्रपद) कोभी प्राप्त होकर मैं ऐसी कोई वस्तु नहीं देखताहूं कि-जो मेरी इन्द्रियों के सन्तप्त करने वाले शोक को दूर करै ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप।
नयोत्स्यइतिगोविन्दमुक्त्वातूष्णींबभूवह॥

सञ्जय बोले कि—

अर्जुन,गोविंद श्रीकृष्ण से यों कहकर कि-

"हे परन्तप ! मैं युद्ध नहीं करूंगा" मौन होगये॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्येविषीदन्तमिदंवचः १०

हे भारत ! दोनों सेनाओं के मध्यमें विषाद करते हुए अर्जुन से हृषीकेश श्रीकृष्ण भगवान् हँसकर यह वचन कहनेलगे॥ १०॥

श्रीभगवानुवाच—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे
गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः ११

श्रीभगवान् बोले कि—

हे अर्जुन ! जिसका शोक नहीं करना चाहिये उसका तो तुम शोच कररहे हो, परंतु बातें सब बुद्धिमानों की समान करते हो, पण्डितलोग मरे हुओं का और जीवतों का शोक नहीं करते हैं ११

नत्वेवाहंजातुनासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।

नचैवनभविष्यामःसर्वेवयमतःपरम् ॥१२॥

क्या मैं प्रथम कभी नहीं हुआ था ? क्या तुम और यह सब राजा नहीं हुए थे ? अथवा इससे अगाड़ी को हम सब लोग उत्पन्न नहीं होंगे ? अर्थात्-प्रथमं भी हुएथे,तथा अगाड़ीको भी होंगे॥

देहिनोऽस्मिन्यथादेहे कौमारंयौवनंजरा ।
तथादेहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥१३॥

जिस प्रकार प्राणी इसी शरीर में बालकपन, युवावस्था और वृद्धभाव को प्राप्त होता है, हे अर्जुन ! इसी प्रकार दूसरे देहकी प्राप्ति भी होती है, इसीकारण से धीर पुरुष इस विषय में मोह-को प्राप्त नहीं होते ॥ १३ ॥

मात्रास्पर्शास्तुकौन्तेयशीतोष्णसुखदुःखदाः॥
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्वभारत ॥

हे कुन्तीके पुत्र ! शीत, उष्ण, सुख और दुःख इनका अनुभव इन्द्रियों के संयोगही से होता है,

और ये सब आगमापायी (उत्पन्न होने और नाश होनेवाले) हैं,अतएव अनित्य हैं, हे भारत! उनका तुम सहन करो, अर्थात्-यह सुख दुःखादिक होतेही रहतेहैं, हर्ष विषादको त्यागके उनको सहनही करना चाहिये ॥ १४ ॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखंधीरंसोऽमृतत्वायकल्पते१५॥

हे पुरुषोत्तम! जिस पुरुषको यह पूर्वोक्त व्याधियें व्यथा नहीं देतीं, और जो धीर पुरुष सुख तथा दुःखको समान मानता है, साक्षात् वोही मोक्षके लिये योग्य समझा जाता है ॥ १५ ॥

नासतोविद्यतेभावो नाभावोविद्यतेसतः ।
उभयोरपिदृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः॥

नाशवान् पदार्थ का विद्यमान होना नहीं होसक्ता और नाशरहित (सत् पदार्थ) का विनाश कभी नहीं है, इन दोनों का तत्त्व ज्ञानियों ने

ऐसा ही निश्चय करा है ॥ १६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदंततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥

जिसने इस समस्त संसार को व्याप्त कर रक्खा है, उसी (चैतन्य परमात्मा) को अविनाशी जानो, अविनाशीका नाश करने को कोई भी सामर्थ्यवान् नहीं है ॥ १७ ॥

अन्तवन्तइमेदेहानित्यस्योक्ताःशरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्यतस्माद्युध्यस्वभारत ॥

हे अर्जुन ! नित्य (सदा रहनेवाले) अविनाशी तथा प्रमाण करने के अयोग्य आत्माकेयह देह अनित्य (नाशवान्) कहे गयेहैं, ऐसा विचार करके तुम युद्ध करो ॥ १८ ॥

यएनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौतौनविजानीतोनायंहन्तिन हन्यते १९

हे पार्थ ! जो पुरुष इस आत्मा को हनन करने
ाला जानता है और जो इसको औरों के द्वारा
नन कराहुआ जानता है, वे दोनों नहीं जानते
अर्थात् दोनोंका ज्ञान असत्य है) क्योंकि-यह
ात्मा न तो किसी को हनन करता है, और
: किसी अन्य के द्वारा स्वयं हनन किया
ाता है ॥ १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजोनित्यःशाश्वतोऽयंपुराणो-
न हन्यते हन्यमानेशरीरे ॥२० ॥

इस आत्माका न कभी जन्म होता है और
न कभी मृत्यु होती है, यह प्रथम भी कभी उत्पन्न
नहीं हुआ और न कभी अगाड़ी को होगा क्यों-
कि-यह आत्मा अजन्मा, नित्य (अविनाशी)
तथा वृद्धि और ह्रास (न्यूनता) रहित एवं

पुरातन है, अतएव शरीर के हनन करने से आ-
त्माका हनन नहीं होता ॥ २० ॥

वेदाविनाशिनंनित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषःपार्थ कं घातयतिहंतिकम्॥२१॥

हे पार्थ ! जो पुरुष इस आत्माको अविनाशी,
नित्य, अजन्मा और विकार रहित जानताहै, वह
पुरुष किसका वध करेगा ? और किसका वध
करावेगा ? ॥ २१ ॥

वासांसिजीर्णानियथाविहाय-
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथाशरीराणिविहाय जीर्णा-
न्यन्यानिसंयातिनवानिदेही ॥ २२॥

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग
कर अन्य नवीन वस्त्रोंको धारण करलेता है, ऐसे
ही यह आत्मा पुराने इन शरीरों को त्यागक

दूसरे नये शरीरको धारण करलेता है ॥ २२ ॥

नैनं छिन्दंतिशस्त्राणि नैनंदहति पावकः ।
नचैनंक्लेदयंत्यापोनशोषयति मारुतः ॥२३॥

इस आत्माको शस्त्र छेदन नहीं कर सक्ते, अग्नि भस्म नहीं करसक्ती, और इस आत्माको जल आर्द्र (गीला) भी नहीं करसक्ता, एवं पवन शुष्कभी नहीं कर सक्ता है ॥ २३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएवच
नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोऽयंसनातनः॥२४॥

यह आत्मा छिन्न भिन्न करने, भस्म करने, भिगोने और सुखाने के योग्य नहीं है क्योंकि आत्मा तो नित्य, सर्व व्यापक, स्थिर, निश्चल और अनादि है ॥ २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिंत्योयमविकार्योऽयमुच्यते
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि२५

इस आत्मा को अव्यक्त (निराकार) चिंता करने के अयोग्य (अर्थात् अगोचर) और विकार

रहित कहते हैं इसकारण आत्मा को पूर्वोक्त अवस्थावाला जानकर हे अर्जुन ! तुम शोच मत करो ॥ २५ ॥

अथचैनं नित्यजातं नित्यंवामन्यसे मृतम् ।
तथापित्वं महाबाहोनैनंशोचितुमर्हसि २६॥

हे लम्बी भुजावाले अर्जुन!तुम यदि इस आत्मा को नित्य उत्पन्न होने वाला और नित्य मृत्यु को प्राप्त होने वाला ही जानते हो तौभी तुम्हें इस का शोच करना उचित नहींहै ॥ २६ ॥

जातस्यहिध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थेनत्वं शोचितुमर्हसि २७।

क्योंकि—जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी, और जिसकी मृत्यु होतीहै उसका जन्म भी अवश्यही होगा । इसकारण हे अर्जुन !

तथा चित्तको स्वाधीन रखनेवाले आत्मज्ञानी यती पुरुष दोनों लोकमें मोक्ष (इस लोक में सुख और परलोक में मोक्ष)को प्राप्त होते हैं ॥२६

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधोयः सदा मुक्तएव सः२८

इन्द्रियोंके शब्दादिक बाह्य विषयों को दूर कर, दोनों भ्रुकुटियों के मध्य में दृष्टि लगाके नासिकामें विचरने वाले प्राण और अपान वायुओं को समान करै तथा इन्द्रिय, मन और बुद्धिको स्वाधीनकर मोक्षकी कामना करने वाले विचारवान तथा जिनके भय, इच्छा और क्रोध दूर होगये हैं ऐसे ज्ञानी पुरुष सदाही मुक्तस्वरूप हैं २७।२८

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो-
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! पुरुष मुझको यज्ञ और तपोंको भोग-नेवाला सम्पूर्ण लोकों का स्वामी, और समस्त प्राणियोंका मित्र जानकर मोक्षको प्राप्त होताहै २९

इति श्रीभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१

श्रीभगवान्ने कहाकि–
जो पुरुष कर्मोंके फलकी कामनाको छोड़कर

कर्त्तव्य क्रर्मोंको करता है वही संन्यासी और योगी है, अग्निहोत्र और कर्म छोडदेने वाले को योगी नहीं कहते हैं ॥ १ ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव
नह्यसंन्यस्तसंकल्पोयोगी भवति कश्चन २

हे पाण्डुनन्दन ! जिसको संन्यास कहते हैं, उसी को तुम योग जानो; क्योंकि--संकल्पका त्याग विना करे कोईभी पुरुष योगी नहीं होता ॥२॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥३॥

मोक्ष प्राप्त होनेकी इच्छा रखने वाले पुरुषका कर्म ही (मुमुक्षु होने में) कारण कहा जाता है, और ज्ञान प्राप्त होजाने पर शान्ति ही ज्ञानका कारण कही जाती है ॥ ३ ॥

यदाहि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ४

जब प्राणी इन्द्रियों के विषयों और कर्मों में आसक्त नहीं होता, तब सब संकल्पोंका त्यागने वाला वह संन्यासी योगारूढ कहलाता है ॥४॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥५

अपने आत्माका मन करके उद्धार करे, (विषयासक्त मन करके) उसको क्लेशयुक्त न करे, क्योंकि (विषयों में अनासक्त हुआ) मन अपना बन्धु और (विषयों में आसक्त हुआ) मनही अपना शत्रु है ॥ ५ ॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ६।

जिसने ज्ञानके द्वारा अपने मनको स्वाधीन करलिया है, वही स्वयं अपना बन्धु (हितकारी) है; और अज्ञानी पुरुषोंका आत्माही उनके शत्रु के समान स्थित रहता है ॥ ६ ॥

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ७

मनको जय करनेवाले, शान्त स्वभावयुक्त मनुष्य का आत्मा-शीत, उष्ण, सुख, दुःख तथा मान और अपमान में शान्तही रहता है॥७॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थोविजितेन्द्रियः
युक्तइत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः॥

शास्त्रज्ञान और आत्मज्ञान के द्वारा भली प्रकार तृप्ति को प्राप्त हुआ, निर्विकार तथा इन्द्रियों का जय करने वाला, मिट्टी और सुवर्ण को समान मानने वाला, योगनिष्ठ पुरुष योगी कहलाता है ॥ ८ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥९॥

जो पुरुष, सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ,

१–श्रीधर स्वामीकृत श्रीधरी व्याख्यामें लिखा है कि—स्वाभाविक हितैषीको 'सुहृद्' । २ स्नेहवश उपकार करनेवाले को 'मित्र'। ३ वादी और प्रतिवादीकी उपेक्षा करनेवाले को 'उदासीन' । ४ वादी और प्रतिवादीको एक भावसे देखनेवाले को 'मध्यस्थ' ।

द्वेष्य, और वन्धु तथा सज्जन और पापी इन सबको समान (ब्रह्म) भावसे देखता है, वह अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥

अपने मन और चित्तको स्वाधीन करके सब प्रकारकी कामना और ममताको त्यागके योगी पुरुष अकेलाही एकान्त में स्थित होकर अपने मन को निरन्तर समाधि में लगावे ॥ १० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्

पवित्र स्थान में अपने अचल आसनको विछावे

---

१ और जिसके देखनेसे चित्तकी वृत्तिको खेद प्राप्त हो उसको 'द्वेष्य' कहते हैं ॥ परंतु-किन्हीं२ टीकाकारों ने 'उदासीन' का बिना निमित्त हित अहित करनेवाला, और 'मध्यस्थ' का शत्रु मित्रको जन्म से समान जानने वाला, अर्थ किया है ॥

यह आसन अत्यन्त ऊँचा और अत्यन्त नीचा न हो, तथा उस आसनको इसप्रकार बिछाना चाहिये कि प्रथम कुशा बिछावै उसके ऊपर मृग-चर्म और उसके ऊपर वस्त्र बिछावै ॥११॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥

उस आसन के ऊपर बैठकर मन और इन्द्रियों के व्यापारको रोककर मनको एकाग्र करके अन्तः-करणकी शुद्धिके अर्थ योगाभ्यास करै ॥१२॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्१३
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तोयुक्त आसीतमत्परः॥

शरीर, मस्तक और ग्रीवाको स्थिर तथा सूधा करके, चारों ओर को न देखता, अपने नासिका के अग्रभागमें दृष्टि लगाकर, अन्तःकरणको शान्त करके, निर्भय और ब्रह्मचर्यमें स्थित होकर, मनको चारों ओरसे हटाके मेरे विषैं लगाकर सत्र

कुछ मुझे ही मानके योग में आरूढ़ रहै १४।।८
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिंनिर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥

इस प्रकार सदा आत्माको स्वाधीन रखने वाला और समाधि में स्थित हुवा योगी मेरे स्वरूप(मोक्षरूप)परम शान्तिको प्राप्त होताहै १५

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
नचातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतोनैव चार्जुन॥१६॥

हे अर्जुन!जो पुरुष अत्यन्त भोजन करता अथवा भोजन नहीं करता,तथा जोपुरुष अधिक शयनकरता वा जागताही रहता है उसको योग प्राप्त नहीं होता॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा१७

जो मनुष्य उचित आहार और विहार करता है, तथा कर्मों को उचित रीतिसे करता है और जो (समयानुसार) उचित ही सोता और जागता है, उसका योगाभ्यास दुःखोंको दूर कर देताहै १७

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निस्पृहः सर्वकामेभ्योयुक्तइत्युच्यते तदा ॥

जब चित्त शान्त होकर अपने आत्माही में स्थित होता है, और सम्पूर्ण कर्मोंकी इच्छा त्याग देता है, उसी समय वह पुरुष योगी कहाता है १८॥

यथा दीपोनिवातस्थोनेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनोयतचित्तस्य युञ्जतोयोगमात्मनः ॥

जिस प्रकार पवनरहित स्थानमें रक्खा हुआ दीपक निश्चल रहता है ऐसेही चित्तको स्वाधीन रखने वाला योगाभ्यासी पुरुष भी निश्चल रहता है, ऐसा दृष्टान्त दिया गया है ॥ १९ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥

जिस अवस्था में योगाभ्यास करके चित्त रुक कर उपराम (शान्ति) को प्राप्त होता है, और जब शुद्ध अन्तःकरणसे आत्माको देखकर आत्माही में सन्तोषको प्राप्त होजाता है ॥ २० ॥

सुखमात्यन्तिकंयत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥२१

तथा जिस समय योगी पुरुष इन्द्रियोंके अगोचर केवल शुद्धबुद्धि से जाननेके योग्य अत्यन्त आनन्दको प्राप्त होता है और जिस अवस्थामें स्थित होकर अपने स्वरूपसे चलायमान नहीं होता॥

यंलब्ध्वाचापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितोन दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

जिस लाभको प्राप्त होकर पुरुष और लाभ को अधिक नहीं मानता, तथा जिस अवस्थामें स्थित हुवा पुरुष बड़भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता॥ २२॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
सनिश्चयेन योक्तव्योयोगोऽनिर्विण्णचेतसा॥

दुःखके संयोग से रहित उसी(अवस्था) को योग कहते हैं। उद्विग्नतारहित मनसे निश्चय उस योगका अभ्यास करना चाहिये॥ २३॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः २४
शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थंमनःकृत्वा नकिंचिदपिचिन्तयेत्॥

संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर मनके द्वारा चारोंओर से सब इन्द्रियों को रोकके धैर्य करके युक्त हुई बुद्धिके द्वारा मनको शनैः २ विषयों से उपराम को प्राप्तकर और मनको आत्मा में स्थित करके किसी वस्तुकी भी चिन्ता न करै॥ २४ ॥ २५ ॥

यतोयतोनिश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततोनियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् २६

स्वभावही से चंचल अतएव स्थिर यह मन जिधर २ को दौड़े उसी २ ओर से इसको रोक कर आत्मा में स्थिर करै॥ २६ ॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥२७॥

जिसके रजोगुणादिक दूर होगये हैं अतएव शान्तचित्त वाले निष्पाप और साक्षात्-ब्रह्मस्वरूप इस योगी पुरुषको उत्तम सुख प्राप्त होता है॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥२८॥

इस प्रकार मनको वशमें करने वाला, निष्पाप योगी पुरुष ब्रह्मके साक्षात् रूप परमसुख को अनायास ही से प्राप्त होजाता है ॥ २८ ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥२६॥

योगाभ्यासी पुरुष अपने आपको सब प्राणियों में स्थित हुआ, सर्वत्र समान देखनेवाला, अन्य सब प्राणियों को अपने में स्थित देखता है॥२९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वंच मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति ३०

जो ज्ञानी मनुष्य सब प्राणियों में मुझे, और

मुझमें सब प्राणियों को देखता है, उससे मैं अदृश्य नहीं रहता, और वह मुझसे अदृश्य नहीं रहता, अर्थात्—दृश्यमात्र सम्पूर्ण पदार्थोंको ब्रह्मरूप देखनेवाला ज्ञानी पुरुष मुझे देखता है और मैं उसे देखता हूं ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं योमां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथावर्तमानोपि सयोगी मयि वर्तते॥३१॥

जो प्राणी भेदबुद्धिको त्यागकर सब प्राणियों में स्थित हुए मुझको एक भावसे भजता है वह योगी सब दशाओं में वर्तमान रहकरभी मुझमें ही स्थित रहता है ॥ ३१ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं सयोगी परमोमतः ३२

हे अर्जुन! जो पुरुष अन्य सबके सुख दुःख को अपने ही सुख दुःखकी समान देखता है, वोही परम [श्रेष्ठ] योगी मानागया है ॥ ३२ ॥

अर्जुनउवाच।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहंनपश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिंस्थिराम्

अर्जुन ने कहा—

हे मधुसूदन ! अपनी समान सबको देखना यह जो योग आपने वर्णन करा, मनके चंचल होनेके कारण इस योगकी चिरकाल पर्य्यंत स्थिति मुझे नहीं दीखती ॥ ३३ ॥

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ३४

हे कृष्ण ! यह मन इन्द्रियों को क्षुभित करने वाला, अत्यन्त विचार करनेसे भी जय करने के अयोग्य और दृढ़ तथा चंचल है, अतएव मैं इसके निग्रहको ठीक वायुके निग्रह की समान कठिन मानता हूं ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ३५

श्रीभगवान् बोले कि–

हे महाबाहो ! यह मन निःसन्देह चंचल और कठिनता से वश में होनेवाला है, तथापि हे कौन्तेय ! अभ्यास और वैराग्य से निश्चल और स्वाधीन होजाता है ॥ ३५ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

जिसका मन अपने वश में नहीं है, हमारी समझमें उसको योग प्राप्त होना अतिकठिन है, उपाय करते हुए जितेन्द्रिय पुरुषको उपाय के द्वारा योग प्राप्त होजाना सहज है ॥ ३६ ॥

अर्जुनउवाच ।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।

अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति

अर्जुन बोले कि–

हे कृष्ण ! जिसके चित्त की वृत्ति स्वाधीन नहीं है, श्रद्धायुक्त और जिसका चित्त योग से चलायमान हो, ऐसा पुरुष योग की सिद्धि को न पा कर कौनसी गति को प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ३८

हे विशालबाहो ! कर्म और ज्ञान इन दोनों के मार्ग से भ्रष्ट हुआ, आधाररहित और ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग से अज्ञानी पुरुष क्या छिन्न भिन्न हुए मेघों की समान नष्ट होजाता है अथवा नहीं ॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता नह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

हे कृष्ण ! इस मेरे संपूर्ण सन्देह को दूर करने को आप ही योग्य हैं, आपसे अन्य इस सन्देह

का छेदन करने वाला मुझे और कोई नहीं दीखता ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहिकल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति

श्रीभगवान् बोले कि-

हे पार्थ ! योगमें भ्रष्ट हुए पुरुषका इसलोक तथा परलोक में नाश नहीं है, क्योंकि हेतात ! शुभ कर्म्मों के करने वाले पुरुष कुगति को प्राप्त नहीं होते ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वाशाश्वतीःसमाः
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोहि जायते॥

योगभ्रष्ट प्राणी पुण्यात्माओंको प्राप्त होने वाले लोकों में प्राप्त होकर और वहां अनेकों वर्ष पर्यन्त निवास करके पवित्र धनवानोंके घरमें जन्म लेते हैं ॥ ४१ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्४२

अथवा अतीव बुद्धिमान् योगियों हीं के घरमें उत्तम जन्म लेता है, हे अर्जुन! ऐसा जन्म संसार में परम दुर्लभ है॥ ४२॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम्।
यतते च ततोभूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ४३

हे कुरुनन्दन! वह भ्रष्टयोगाभ्यासी योगियों के कुलमें उत्पन्न होकर पहिले देहसे अभ्यास करे हुए बुद्धिसंयोग (आत्मज्ञान) को प्राप्त होता है और फिरभी मोक्षरूप सिद्धि के अर्थ यत्न करता है॥ ४३॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियेत ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ४४

योगसे भ्रष्टहुआ योगी पुरुष पूर्व देहसे करे हुए अभ्यासके द्वारा भी मोक्षको प्राप्त होता है, और जो योगके जाननेकी इच्छा करनेवाला है वह

रूप वेदोक्त कर्मफलसे भी अधिकफलकोप्राप्तहोताहै।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परांगतिम् ४५॥

अत्यन्त यत्न से योगाभ्यास करनेवाला, निष्पाप योगी अनेक जन्मोंमें करेहुए पुण्योंके द्वारा सिद्धिको प्राप्तहोकर मोक्षरूप परमगतिको प्राप्तहोताहै।

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः । कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगी तस्माद् योगी भवार्जुन ॥ ४६ ॥

तत्त्वज्ञानी योगी पुरुष तपस्वी, ज्ञानी और अश्वमेधादिक कर्म करने वालोंसे भी अधिक श्रेष्ठ है इस कारण हे अर्जुन ! तुमभी योगी होजाओ ४६

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते योमां समे युक्ततमोमतः॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ध्यानयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जो योगीपुरुष अपनी चित्तवृत्तिको मेरे विषें लगाकर श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करता है, उस योगी को मैं सब योगियोंसे अति श्रेष्ठ मानता हूँ॥४७॥

इति श्रीभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

श्रीभगवान् बोले कि–

हे पार्थ ! चित्तवृत्तिको मुझ में लगाकर मेराही आश्रय करके योगाभ्यास करते हुए तुम जिस प्रकार निश्चय मुझे पूर्णरूप जानोगे, उस ज्ञानको सुनो ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते

हे अर्जुन ! मैं तुम्हारे प्रति शास्त्रीय ज्ञान और अनुभवज्ञान इन दोनों ज्ञानोंको संपूर्ण वर्णन करताहूं, जिस ज्ञानको जानकर इस लोक में फिर कोई दूसरी वस्तु जाननेके योग्य नहीं रहती ॥२॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः

हजारों मनुष्योंमें से कोई एक विरलाही सिद्धिके अर्थ यत्न करता है, और यत्न करने वाले उन हजारों में से भी कोई एकही मुझ ब्रह्म के तत्त्वको जानता है ॥ ३ ॥

भूमिरापोऽनलोवायुः खं मनोबुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि

और अहंकार यह आठ प्रकारकी मेरी प्रकृति है ४

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ५

परन्तु हे महाबाहो ! यह निकृष्ट प्रकृति है, इस के अतिरिक्त मेरी जीवरूप दूसरी श्रेष्ठ प्रकृति है उसे तुम जानो, जोकि—इस समस्त संसार को धारण कररही है ॥ ५ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ६

हे अर्जुन! यह सब प्राणी इन दोही प्रकृतियों से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा तुम जानो । तथा इस सम्पूर्ण संसार का उत्पत्तिस्थान और नाश करने वाला मैं हूं ॥ ६ ॥

मत्तःपरतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणाइव॥७॥

हे धनञ्जय ! मुझसे परे और कोई वस्तु नहीं

है, जिस प्रकार सूत्र में मणियें पुही रहती हैं, इसी प्रकार मुझ में यह सारा जगत् ओत प्रोत होरहा है ॥ ७ ॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्य्ययोः
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥

हे कौन्तेय ! मैं परब्रह्म जलोंमें रसरूप, सूर्य चन्द्रमा में प्रभारूप, सब वेदों में ओंकार और आकाश में शब्द तथा मनुष्यों में पुरुषार्थरूप से विद्यमान हूं ॥ ८ ॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

पृथ्वी में पवित्र गन्धरूप, अग्निमें तेज और समस्त प्राणियों में तपरूप मैं ही हूँ ॥ ९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥

हे पार्थ ! तुम मुझे सम्पूर्ण प्राणियोंका सना-

तनबीज (उत्पत्ति का कारण) जानो, और बुद्धिमानों में बुद्धिरूप तथा तेजस्वियों में तेज-स्वरूप मैं ही हूं ॥ १० ॥

बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धोभूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ११

हे भरतर्षभ ! बलवान् पुरुषों में काम और रागरहित, बल (पराक्रम) तथा सम्पूर्ण प्राणियों में धर्म के अनुकूल जो काम है, सो मैंही हूं ॥ ११ ॥

ये चैव सात्त्विकाभावा राजसास्तामसाश्चये।
मत्तएवेति तान्विद्धि नत्वहं तेषु ते मयि १२

सतोगुण, तमोगुण और रजोगुण में उत्पन्न हुए जितने पदार्थ हैं, वे सब मुझही से उत्पन्न होते हैं, परन्तु हे अर्जुन ! मैं उन के आधीन नहीं हूं, किन्तु वेही मेरे विषै स्थित हैं ॥ १२ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्

यह सारा संसार सात्विक आदि तीनों गुणों
उत्पन्न हुए पदार्थोंसे मोहित होरहा है, अत॰
न इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को
हीं जानता ॥ १३ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते १४ ॥

हे अर्जुन ! अद्भुत और त्रिगुणात्मक यह मेरी
माया परम दुस्तर है, परन्तु जो पुरुष अनन्य-
भावसे मेरा भजन करते हैं, वोही इस दुस्तर मायाको
तरजाते हैं ॥ १४ ॥

न मां दुष्कृतिनोऽमूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरंभावमाश्रिताः १५

दुराचारी, मूढ (अज्ञानी) और जिनका ज्ञान
माया से दूर होगया है, तथा (हिंसा आदि)
आसुरीयभावको प्राप्त हुए अधम (नीच)
मनुष्य मुझे नहीं पाते हैं ॥ १५ ॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ१६

हे भरतर्षभ अर्जुन! आर्त्त (रोगादिसे पीडित) जिज्ञासु(आत्मज्ञानके जानने की इच्छा करनेवाला) अर्थार्थी (धनादिक भोगों की इच्छा करनेवाला) तथा ज्ञानी ये चार प्रकार के पुण्यात्मा पुरुष मेरा भजन करते हैं॥ १६

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तएकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियोहि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स च ममप्रियः१७

पूर्वोक्त चारोंप्रकार के भक्तों में से सदा मेरे विषे निष्ठा रखने वाला और केवल मेरी ही भक्ति करने हारा, ज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ है, क्योंकि—मैं ज्ञानी को अत्यन्त प्यारा हूं और ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्यारा है॥ १७॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितःसहियुक्तात्मामामेवानुत्तमांगतिं

.. यद्यपि उक्त चारों प्रकार के भक्त श्रेष्ठ हैं, तथापि ज्ञानी मेरा आत्मा ही है, क्योंकि-वह ज्ञानी पुरुष चित्तकी वृत्तिको मेरे ही विषें लगाके सबसे श्रेष्ठगति मुझही को मानकर मेरा आश्रय करता है ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

ज्ञानी पुरुष सब संसारको वासुदेवरूप ही देखकर अनेक जन्मों के पीछे मुझे प्राप्त होता है, परन्तु ऐसा महात्मा दुर्लभ है॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥२०

वासनाके अनुरूप गुणों करके जिनका ज्ञान नाशको प्राप्त होगया है ऐसे पुरुष पूर्वजन्मके कर्मानुसार स्वभावसे अनेकों नियमोंको ग्रहण करके अन्यान्य देवताओंका भजन करते हैं॥ २० ॥

योयो यां यां तनुं भक्तःश्रद्धयार्चितुमिच्छति
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेवविदधाम्यहम्॥

जो २ पुरुष जिस २ देवताकी मूर्तिमें भक्ति करके श्रद्धासे पूजन करते हैं, मैं उन्ही उन पुरुषोंकी उन्हीं उन देवताओंमें दृढ श्रद्धा करदेता हूं ॥२१॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततःकामान्मयैव विहितान्हि तान्

उसी श्रद्धासे युक्त होकर वह पुरुष उन्हीं देवताओं के आराधन करनेकी इच्छा करता है, तनदन्तर मेरे दिये हुए मनोभिलषित मनोरथों को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजोयान्ति मद्भक्तायान्ति मामपि

हे अर्जुन! उन देवताओं की पूजासे उत्पन्न हुआ जो फल अल्पबुद्धि पुरुषों को प्राप्त होता

है वह नाशवान् है, देवताओं की पूजा करनेवाले पुरुष देवताओं को प्राप्त होते हैं, और मेरे भक्त मुझेही प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् २४

अज्ञानी पुरुष मुझ अगोचर को व्यक्त(प्रत्यक्ष हुआ) मानते हैं वे अज्ञानी पुरुष सबसे श्रेष्ठ और अविनाशी मेरे भावको नहीं जानते २४

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयंनाभिजानाति लोकोमामजमव्ययम्

योगमाया से आवृत हुआ मैं सबके अर्थ प्रकट नहीं दीखता हूं, अतएव अज्ञानी पुरुष मुझ अजन्मा और अविनाशी को नहीं मानते॥२५

१—अर्थात् देवपूजन से उत्पन्न हुए स्वर्गादिक अनित्य हैं क्योंकि—"क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" ऐसा लिखा है। और श्रीकृष्णका आराधन करने वालों की मुक्ति होजाती है।

वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥

हे अर्जुन ! मैं भूत (बीतेहुए) भविष्यत् (होने वाले) और वर्त्तमान इन तीनों काल के सम्पूर्ण विषयों को जानता हूं, परन्तु मुझे कोई नहीं जानता ॥ २६ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप २७

हे परंतप ! सृष्टि अर्थात्--स्थूल शरीर के उत्पन्न होते ही इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न हुए सुख दुःखादिकों से संपूर्ण प्राणी मोह को प्राप्त होजाते हैं

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः२८

जिन सुकृती पुरुषों के पाप नाशको प्राप्त हो गये हैं, वे सुख दुःखादिक मोहसे मुक्त होकर दृढ निश्चयसे मेरा भजन करते हैं ॥ २८ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्मचाखिलम्

जो पुरुष जरा (वृद्धावस्था) और मरणको दूर करने के अर्थ मेरा आश्रय लेकर साधन करते हैं, वे मनुष्य परब्रह्म, आत्मज्ञान और समस्तकर्मों को जानते हैं ॥ २९ ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ३०

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ, इन करके सहित मेरा आराधन करते हैं, वे समाधिनिष्ठ पुरुष मरणकाल में भी मुझे नहीं भूलते, अर्थात् उनके चित्तकी वृत्ति स्थिर रहती है, इसी कारण उन्हें मेरा ध्यान बना रहता है ॥ ३० ॥

इतिश्री भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

अर्जुनउवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ?

अर्जुनने पूछा कि–

हे पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म किसको कहते हैं ? कर्म क्या पदार्थ है ? और अधिभूत तथा अधिदैव किसको कहा जाता है ॥ १ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकालेच कथंज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः २

हे मधुरे ! इस देह में अधियज्ञ कैसा और क्या है ? स्थिरचित्त वाले पुरुष मृत्युके समय आपको किस प्रकार जानसक्ते हैं ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरोविसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

श्रीभगवान् बोले कि—

जिसका किसी भी काल में विनाश (और विकार) न हो वह परब्रह्म है, (जीवों के स्वरूप द्वारा प्रकट होनेवाले उनके) स्वभावको अध्यात्म कहते हैं, सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति और वृद्धि करने वाले (यज्ञादिक) आचरण की कर्मसंज्ञा है ॥ ३ ॥

अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

हे शरीरधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! नाशवान् पदार्थों को अधिभूत कहते हैं, पुरुष (अर्थात्—सब देवताओं के आत्मस्वरूप हिरण्यगर्भ) को अधिदैवत कहते हैं (इन्द्र आदिक देहों में विद्यमान्, यज्ञों में आराधन करने के योग्य) मैं अधियज्ञ हूं ॥ ४ ॥

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति समद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

जो पुरुष अंतके समय मेरा ध्यान करता २ शरीर को त्यागता है, वह पुरुष निःसन्देह मेरे ही स्वरूप को प्राप्त होजाता है ॥ ५ ॥

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ६

हे कुन्ती के पुत्र ! अन्त के समय जिस जिस पदार्थों को स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागता है, पदार्थ की भावना करने के कारण वह उसी २ भावको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥७॥

इसकारण हे अर्जुन ! सदा मेरे विषै चित्त और बुद्धिको लगाकर युद्ध करने के लिये प्रवृत्त रहो तो तुम निश्चय मुझे ही प्राप्त होओगे ॥७॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥८॥

हे पार्थ ! अभ्यास के साधनों के द्वारा एका-

प्रज्ञा को प्राप्त हुए अतएव सब ओर से हटेहुए चित्त से मेरा चिन्तवन करता हुआ पुरुष दिव्य और परमपुरुष परमात्मा को प्राप्त होता है ८

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ॥
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसःपरस्तात् ॥ ९ ॥
प्रयाणकाले मनसा चलेन,
भक्त्या युक्तोयोगबलेन चैव ॥
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्,
सतं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

भक्ति और योगबल करके युक्त हुआ जो पुरुष प्राण त्यागने के समय प्राणों को दोनों भ्रुकुटियों के मध्यमें भली प्रकार प्रवेश करके सर्वज्ञ, अनादि, सम्पूर्ण जगत् के शिक्षक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सम्पूर्ण प्राणीमात्र के धारण और

पोषण करने वाले, अचिन्त्य रूपवान्, और सूर्य की समान प्रकाशवान् तथा तमोगुण से पृथक् परब्रह्म (परमेश्वर) का स्मरण करता है, वह परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

यदक्षरं वेदविदोवदन्ति,
विशन्ति यद्यतयोवीतरागाः ॥
यदिच्छन्तोब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

वेदको जाननेवाले पुरुष जिस (पदार्थ) अविनाशी कहते हैं, रागरहित संन्यासी जि प्रविष्ट होते हैं, और ब्रह्मचारी जिस के प्राप्ति की कामना करके ब्रह्मचर्य का आचरण करते उस पदका संक्षेप से मैं तुम्हारे प्रति करता हूं ॥ ११ ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरुध्य च
मूर्ध्न्याधायात्मनः

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमां गतिम् ॥

जो ज्ञानी पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियों के द्वारों को रोककर मनको हृदयमें निश्चल (स्थिर) करके अपने प्राणवायु को मस्तक में लेजाकर योग-धारण करता, मेरा स्मरण करता हुवा, विकार-रहित, ब्रह्मरूप " ओं " इस एक अक्षर को उच्चारण करके देहको त्यागता है, वह परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होजाता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अनन्यचेताः सततं योमां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

हे पार्थ ! प्रति दिन चित्तकी अनन्यवृत्ति से जो (योगी) मेरा स्मरण करता है, उस निरन्तर

१—मूर्धा शब्दका 'ब्रह्मरन्ध्र' भी अर्थ है, क्योंकि–अथर्व- में हृदयव्यापार के अर्थ जो १०१ नाडियें हैं उनमें से एक ही ब्रह्मरन्ध्र को गई है, उस नाड़ी के द्वारा प्राणवायु ऊपरको चढ मुक्तिको प्राप्त होता है ॥

योगाभ्यासी योगी पुरुषको मैं सहज ही में प्राप्त होजाता हूं ॥ १४ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गत

मुझे प्राप्त होकर परमसिद्धि को प्राप्त हुए महात्म पुरुष दुःखके स्थानरूप और अनित्य ऐसा जो जन्म तिसको प्राप्त नहीं होते, अर्थात्—उनकी मुक्ति होजाती है ॥ १५ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते १६

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकपर्यंत जितने लोक हैं, वे सब उत्पत्ति तथा नाशसहित हैं (अर्थात्—ब्रह्म-लोक पर्यंत सम्पूर्ण लोकों में रहनेवाले प्राणियों का जन्म मरण होता है,) परन्तु हे कुन्तीनन्दन ! मुझे प्राप्त होकर फिर जन्म नहीं होता ॥ १६ ॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदोजनाः

हे अर्जुन!(सतयुग--त्रेता--द्वापर--कलियुग इन) हजार युगोंका ब्रह्माजीका एक दिन होता है, तथा हजार युगकी जो ब्रह्माजीका एक रात्री होती है उसको जो पुरुष जानते हैं, वास्तव में वेही पुरुष दिन और रात्री के जानने वाले हैं ॥ १७ ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके १८

ब्रह्माजी के दिनमारम्भ में अव्यक्त (अर्थात् अप्रकट जो ब्रह्माजी का स्वरूप तिस) से स्थावर जंगमादिक सम्पूर्ण व्यक्तियें उत्पन्न होती हैं और रात्री के प्रारम्भ में सब व्यक्तियें उन्हीं अव्यक्त में लय होजाती हैं ॥ १८॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवन्त्यहरागमे १९

वही यह सम्पूर्ण प्राणियों का समूह वारम्वार (दिन के प्रारम्भ में) उत्पन्न होकर (रात्रि

में) नाशको प्राप्त होजाता है, कर्मोंके परवश हुए यह सब जीव दिनके आरम्भ में उत्पन्न होते और रात्री के आगम में नाशको प्राप्त होजाते हैं॥

परस्तस्मात्तु भावोन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातन
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

परन्तु हे अर्जुन ! उस अव्यक्त से परे सदा रहनेवाला एक व्यक्त पदार्थ है, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके नाश होजानेपर भी नाशको प्राप्त नहीं होत

अव्यक्तोऽक्षरइत्युक्तस्तमाहुः परमांगतिम्
यं प्राप्य न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम॥२१॥

हे अर्जुन ! अव्यक्त ही को अक्षर (अविकारी) कहा गया है और उसीको परमगति कहते हैं, जिसको प्राप्त होकर फिर कोई प्राणी नहीं लौटता वही मेरा सबसे श्रेष्ठ धाम है ॥२१॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्

हेपार्थ!जिसके भीतर सम्पूर्ण प्राणी स्थित हैं औ

जिसने इस सम्पूर्ण संसारको व्याप्त कर रक्खा है, वह परमपुरुष अनन्यभक्तिके द्वारा प्राप्त होसक्ता है

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयातायान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥

हे भरतर्षभ! जिस समय शरीर त्यागने से योगीजनों का पुनर्जन्म होता है, और जिस समय शरीर त्यागने से योगीपुरुषोंका पुनर्जन्म नहीं होता है, उन दोनों समयों का मैं तुमसे वर्णन करता हूं॥ २३॥

अग्निर्ज्योतिरहःशुक्लःषण्मासा उत्तरायणम्
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदोजनाः॥

अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष, और उत्तरायण-सूर्य के छै महीने इनमें प्राणोंका परित्याग करके जानेवाले ब्रह्मज्ञानी पुरुष ब्रह्मही को प्राप्त होते हैं॥ २४॥

---

१ मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृष, और मिथुन इन राशियों के सूर्य उत्तरायण कहाते हैं॥

धूमोरात्रिस्तथाकृष्णः षण्मासादक्षिणायनम्
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते॥

धूम, रात्री, कृष्णपक्ष और दक्षिणायन—सूर्य के छै महीने इनके मध्य में प्राणों का परित्याग करने वाले योगीपुरुष चन्द्रसम्बन्धी तेज (अर्थात्-स्वर्गादि लोकों) को प्राप्त होते हैं, और (पुण्य भोगने के अनन्तर) फिर लौट आते हैं॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः २६

शुक्ल (देवयान) और कृष्ण (पितृयान) संसारकी यह दोनोंगाति सनातन से मानी गई हैं, इनमें से एक (शुक्ल) गति से चलने वाले योगियों का तो पुनर्जन्म नहीं होता और दूसरी (कृष्ण) गतिसे चलने वालों को फिर जन्म धारण करना पड़ता है॥ २६॥

१—कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और धन इन राशियों के सूर्य दक्षिणायन कहाते हैं॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तोभवार्जुन २७

हे पार्थ! दोनों गतियोंको जाननेवाला कोई भी योगी पुरुष मोहको प्राप्त नहीं होता, इस कारण हे अर्जुन! तुम सब कालमें योग से युक्तरहो (अर्थात् योगी बनो) ॥ २७ ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव,
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ॥
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा,
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादेऽक्षरपरब्रह्मयोगो-
नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वेदाभ्यास करने से, यज्ञ और तप करने से, तथा दान देने से जो पुण्यफल प्राप्त होता है, मेरे कहे हुए इस तत्त्वको जानने वाला पुरुष उन सब

पुण्यों का उल्लंघन करके परमोत्तम आद्यस्थान (ब्रह्मको) प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः



श्रीभगवानुवाच ।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानंविज्ञानसहितंयज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात्

श्रीभगवान् बोले कि—

हे अर्जुन ! तुम्हारे विषै अवज्ञाबुद्धि (किसीसे असूया करना) नहीं है, अतएव अत्यन्त गोपनीय शास्त्रज्ञानसहित अनुभवज्ञानका तुमसे वर्णन करता हूँ, जिसे जानकर तुम अशुभ (संसार के बन्धन) से मुक्त होजाओगे ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् २

यह आत्मज्ञान समस्त विद्याओं का राजा और गुप्त रखने के योग्य, सम्पूर्ण वस्तुओं में श्रेष्ठ अत्यन्त पवित्र तथा सर्वोत्तम, प्रत्यक्ष ज्ञानरूप फलका देनेवाला, धर्मका साधक, सुखपूर्वक आचरण करने के योग्य और नाशरहित है॥२॥

अश्रद्दधानाः पुरुषाधर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ३

हे परन्तप ! इस परमधर्ममें श्रद्धा न करने वाले पुरुष मुझको प्राप्त न होकर मरण (अर्थात् जन्म, मरण) सहित संसारके मार्ग में फिर लौट आते हैं ॥ ३ ॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि नचाहं तेष्ववस्थितः॥

मैंने अव्यक्तरूप से इस संसार को व्याप्त कर रक्खा है, इसकारण सम्पूर्ण प्राणी मेरे आधीन हैं और मैं उनके आधीन नहीं हूं ॥ ४ ॥

नच मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थोममात्मा भूतभावनः ५

हे अर्जुन ! मेरे योग के प्रभावको देखो कि वे प्राणी मेरे विषें नहीं हैं, यद्यपि मैं सम्पूर्ण प्राणियों का पालन पोषण करने वाला हूं, तथापि मेरा आत्मा सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित नहीं है ॥५॥

यथाकाशस्थितोनित्यं वायुःसर्वत्रगोमहान्
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय

तुम ऐसा जानो कि जैसे आकाश में स्थित हुआ अत्यन्त वेगवाला वायु नित्य सर्वत्र गमन करता है (अर्थात् आकाश में विचरता हुआ वायु आकाश से भिन्न है) ऐसे ही संपूर्ण प्राणी मेरे विषें स्थित हैं (अर्थात् मेरे विषें स्थित होकर भी मुझ से अलग हैं) ॥ ६ ॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिंयान्तिमामिकाम्
कल्पक्षयेपुनस्तानि कल्पादौविसृजाम्यहम्

हे कौन्तेय ! कल्पके अन्त में सब प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं और कल्पके प्रारम्भमें फिर मैं उनको उत्पन्न करता हूं ॥ ७ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ८

हे अर्जुन ! मैं अपनी मायारूप प्रकृतिका अवलम्बन करके स्वभाव से अविद्या के वशीभूत हुए सम्पूर्ण प्राणियों को वारंवार उत्पन्न करताहूं।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ।९ ।

परन्तु हे धनंजय ! वे कर्म मुझे बन्धन में नहीं डालसक्त, क्योंकि—मैं उन कर्म्मों के विषैं आसक्त नहीं हूं, केवल उदासीन की समान उन कर्म्मों में स्थित रहता हूं ॥ ९ ॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १०॥

प्रकृति जो है यह सब के साक्षीरूप मुझ परमेश्वर का आश्रय करके सम्पूर्ण चराचरको उत्पन्न करती है, हे कौन्तेय ! इसीकारण यह संसार वारम्वार जन्म लेता और मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषींतनुमाश्रितम
परंभावमजानन्तोमम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

अज्ञानी पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके ईश्वरस्वरूप मेरे स्वरूप (प्रभाव) को न जानकर मनुष्यदेह धारण करने पर मेरी अवज्ञा करते हैं ॥ ११ ॥

मोघाशामोघकर्माणोमोघज्ञानाविचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहनींश्रिताः १२

बुद्धिको मोहित करनेवाली राक्षसी और आसुरी प्रकृतिका आश्रय करनेसे उन पुरुषोंके अभिलाषा, कर्म और ज्ञान निष्फल तथा बुद्धि विक्षिप्त हैं ॥ १२ ॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवींप्रकृतिमाश्रिताः
भजन्त्यनन्यमनसोज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्

हे पार्थ ! देवस्वभाव को प्राप्तहुए महात्मा लोग चित्त को एकाग्र करके मुझको सम्पूर्ण प्राणियों का आदिकारण और अविनाशी जानकर मेरा भजन करते हैं ॥ १३ ॥

सततं कीर्तयन्तोमां यजन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ताउपासते॥

सदा मेराही कीर्त्तन और पूजन करते तथा मुझेही नमस्कार करते हुए दृढभक्तिसे चित्तको एकाग्र करके नित्य मेरीही उपासना करते हैं १४

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तोमामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् १५

कोई २ ज्ञानी पुरुष ज्ञानरूप यज्ञके द्वारा भजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, कोई ज्ञानी मुझ में और अपने में अभेद देखते हैं और कोई २

भिन्नभाव देखकर बहुत प्रकारसे संसारके स्वामी रूप मेरी उपासना करते हैं ॥ १५ ॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् १६

वेदोक्त (अग्निष्टोमादिक) यज्ञ, स्मार्त (पंच-यज्ञादिक) यज्ञ, स्वधा (पितृयज्ञ) और औषध यह मैं ही हूं, तथा मन्त्र, घृत, यज्ञाग्नि और हवनीय द्रव्य यह सब मैं ही हूं ॥ १६ ॥

पिताहमस्य जगतोमाता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कारऋक्सामयजुरेव च॥ १७॥

मैं ही इस अखिल संसारका पिता, माता, पालन-पोषणकर्ता, और पितामह हूं तथा जानने के योग्य (वस्तु) पवित्र, ॐकार स्वरूप, ऋक् यजुः और सामवेदभी मैं ही हूं ॥ १७ ॥

गतिर्भर्ता प्रभुःसाक्षी निवासःशरणंसुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

संसारकी गति, पालन करने वाला, प्रभु (शिक्षक), साक्षी (शुभाशुभ का देखनेवाला) निवासस्थान, शरण का देनेवाला (रक्षक) और सुहृद्, उत्पन्न और नाश करने वाला आधार, निधान (प्रलयस्थान) तथा अविनाशी बीज भी मैं ही हूं ॥ १८ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥१९॥

हे अर्जुन ! आदित्यरूप से मैं ही तपता हूं, मैं ही जलको खीचता और बरसाता हूं, अमृत (जीवन) और मृत्यु भी मैं ही हूं, तथा मैं ही सत् (विद्यमान) और असत् (अविद्यमान)हूं॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा-
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ॥
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यां दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥

ऋक्, यजु, साम तीन वेदों के अनुष्ठानमें तत्पर, (यज्ञशेष) सोमका पान करने वाले निष्पाप पुरुष यज्ञों के द्वारा मेरा पूजन करके स्वर्ग प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं, और वे पवित्र इन्द्रलोक (स्वर्ग) को प्राप्त होकर स्वर्गमें देवताओं के दिव्य भोगों को भोगतेहैं ॥ २० ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥
एवं त्रयी धर्ममनुप्रपन्ना-
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१ ॥

परन्तु फिर वे पुरुष अनेक प्रकार के स्वर्गीय-सुखोंको भोगकर पुण्यक्षीण होजानेपर मर्त्यलोक को प्राप्त होते हैं । स्वर्गादि की प्राप्तिरूप कामना से तीनों वेदोंके अनुसार अनुष्ठान करने वाले पुरुष वारम्वार इस लोक और स्वर्गलोक को आते जाते हैं ॥ २१ ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तोमां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्
चित्तकी वृत्तिको चारों ओरसे हटाकर मेरा ही चिन्तवन करते हुए जो पुरुष मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य योगाभ्यासी पुरुषों को मैं योग, क्षेम करता हूं ॥ २१ ॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
हे कौन्तेय ! जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर अन्यान्य देवताओं की भक्तिसे उपासना करते हैं, परन्तु वेभी अज्ञानसे मेरीही उपासना करते हैं ॥२३॥

१—अप्राप्त वस्तु के लाभको योग कहते हैं।

२—प्राप्त वस्तु का पालन करना क्षेम कहाता है।

३—अर्थात् वे यह नहीं जानते कि सब देवताओं में परमेश्वर ही की सत्ता है,अतएव सब देवताओं की पूजासे परमेश्वर ही की पूजा होती है ऐसा न समझनेही के कारण उनको मुक्ति भी नहीं होती।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
नतु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते

मैं सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी हूं, परन्तु वे मुझे (यज्ञोंका भोक्ता और फल देनेवाला) नहीं जानते, इसीकारण जन्म, मरण को प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्तिपितृव्रताः
भूतानियान्तिभूतेज्या यान्तिमद्याजिनोपिमाम्

देवताओं की उपासना करने वाले देवलोकों को, पितरों की भक्ति करने वाले पितृलोकों को, और भूतोंकी आराधना करने वाले भूतलोकों को प्राप्त होते हैं, ऐसे ही मेरा आराधन करने वाले पुरुष मुझे प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं योमे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

हे अर्जुन ! जो शुद्धचित्त होकर पत्र, फल, फूल और जल, भक्ति से मेरे अर्पण करता है, उस (भक्ति से दियेहुए को) मैं भी प्रसन्न होकर ग्रहण करता हूं ॥ २६ ॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् २७

हे कौन्तेय ! तुम जो (कार्य) करते हो, जो भोजन करते हो, जो आहुति देते हो, ऐसेही जो दान देते और तप करते हो, वह सब मेरे अर्पण करदो (अर्थात् सबकर्मों को निष्काम होके करो) ॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तोमामुपैष्यसि

हे अर्जुन ! इस प्रकार कर्मरूप बन्धन के शुभ और अशुभ फलों से मुक्त होजाओगे, और सम्पूर्ण कर्मों को मेरे विषैं अर्पण करके एकाग्रचित्त होके जीवन्मुक्त होकर मुझे प्राप्त होओगे ॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्तितु मां भक्त्यामयिते तेषु चाप्यहम्

मैं सब प्राणियों में समान हूं, मेरा प्यारा और शत्रु कोई नहीं है, जो पुरुष भक्ति से मेरा भजन करते हैं, उन के विषै मैं और मुझ में वे विद्यमान् हैं ॥ २९ ॥

अपि चेत्सुदुराचारोभजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव समन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहि सः॥

जो दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भजन करता है, उसे साधु (उत्तम) ही समझना चाहिये कारण कि वह सन्मार्ग में प्रवृत्त हो रहा है ॥ ३० ॥

क्षिप्रं भवतिधर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति

वह दुराचारी शीघ्रही धर्मात्मा होजाता है, (और धर्मनिष्ठ होने के कारण) सदा शान्तिही

को प्राप्त होता है, हे कौन्तेय ! तुम यह निश्चय जानो कि-मेरा भक्त नाशको प्राप्त नहीं होता ३१

मांहि पार्थ व्यपाश्रित्य येपि स्युः पापयोनयः
स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेपियान्तिपरांगतिम्

हे अर्जुन ! जबकि-मेरा आश्रय लेकर नीच-कुल में उत्पन्न हुए, स्त्रियें, वैश्य तथा शूद्र भी परम-गति (मोक्ष) को प्राप्त होजाते हैं ॥ ३२ ॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्याभक्ताराजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखंलोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्

तौ फिर पवित्रकर्म करने वाले ब्राह्मण, मेरे भक्त तथा राजर्षियों के लिये तौ कहना ही क्या है (अर्थात् उनका तौ अवश्य ही मोक्ष होता है) इस कारण हे अर्जुन ! सुखरहित नाशवान् इस संसार में आकर तुम मेरा भजन करो ॥ ३३ ॥

मन्मनाभव मद्भक्तोमद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥
इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्य-
योगोनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! अपने मनको मेरे विषैं लगाओ, मेरही भक्त बनो, मेरा ही भजन पूजन करो, और मुझे ही नमस्कार करो, इसप्रकार मेरे विषैं चित्त लगाकर मेरा ही आश्रय लेके मुझको प्राप्त होओगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहंप्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले कि—

हे महाबाहो ! अर्जुन ! फिरभी तुम मेरे परम (परमात्मतत्त्वनिष्ठ) वचनको सुनो, अत्यन्त प्रीति करने वाले तुमसे मैं हितकी कामना करके कहता हूं ॥ १ ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः २

मेरे जन्मको देवसमुदाय और महर्षिगण भी नहीं जानते क्योंकि मैं सम्पूर्ण देवता और महर्षियोंका आदिकारण हूं ॥ २ ॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३॥

जो पुरुष मुझको अजन्मा,अनादि और समस्त लोकोंका महेश्वर जानता है वही नर सब मनुष्योंमें मोहरहित होकर सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३ ॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखंदुःखं भवोभावोभयं चाभयमेव च ४
अहिंसा समता तुष्टिस्तपोदानं यशोऽयशः
भवन्ति भावाभूतानां मत्तएव पृथग्विधाः५

हेअर्जुन! बुद्धि, ज्ञान, मोहका अभाव, क्षमा, सत्य, दम[1], शम, सुख, दुःख, उत्पत्ति, विनाश, भय और अभय, अहिंसा, सबको समान देखना, सन्तोष, तप, दान, यश और अपयश, प्राणियों के यह भिन्न २ प्रकार के भाव मुझसेही उत्पन्न होते हैं।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारोमनवस्तथा ।
मद्भावामानसाजाता येषां लोकइमाः प्रजाः

मेरे विषैं चित्तकी वृत्तिको लगाने वाले प्राची सप्तर्षि[2] और चार मनु[3] यह सब मेरे मन से उत्प

१–बाह्य इन्द्रियों की शान्तिको दम और अन्तःकरण की॰ को शम कहते हैं।

२–भृगु, मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, और वसिष्ठजी

३–सनकादिक ।

हुए हैं, जिनकी सन्तान यह सब प्रजा है ॥६॥
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥७
मेरी इस विभूति (अर्थात्-ईश्वरत्वसूचक ऐश्वर्य) को और योग (चातुर्य) को जो पुरुष यथावत् जानता है, वह निःसन्देह निश्चल योग को प्राप्त होजाता है ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥
मैं संपूर्ण जगत् का उत्पन्न करनेवाला हूं, संपूर्ण चर अचरकी प्रवृत्ति मुझही से होती है इस प्रकार मेरे ऐश्वर्य को मानकर प्रेमसहित ज्ञानी पुरुष मेरा भजन करते हैं ॥ ८ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च
चित्त और प्राणोंको मेरे ही विषै लगाकर

परस्पर मेरा ही विचार करते हुए सज्जन पुरुष मेरा ही कीर्त्तन करके नित्य सन्तुष्ट होते और रमण करते हैं ॥ ९ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते१०

जो पुरुष सदायोगमें चित्त लगाकर प्रीतिपूर्वक मेरा भजन करते हैं, उनको मैं बुद्धिरूप ऐसा श्रेष्ठ साधन देता हूं, कि-जिसके द्वारा (वेदान्त-विचार करके) वे मुझ को प्राप्त होजाते हैं १०

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थोज्ञानदीपेन भास्वता ॥

उन्हीं भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त मैं बुद्धिमें स्थित हुआ उनके अज्ञानजनित अंधकारको प्रकाशमान् ज्ञानरूप दीपकसे नाश कर देता हूं ॥ ११ ॥

अर्जुनउवाच ।

परंब्रह्म परंधाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितोदेवलोव्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥

अर्जुनने कहा कि—

तुम परब्रह्म, परमधाम (तेजःस्वरूप) और परमपवित्र हो, देवर्षि नारद, असित, देवल और व्यासजी आदि संपूर्ण ऋषि आपको नित्य, दिव्य, आदिदेव, जन्मरहित और सर्वव्यापक पुरुष कहते हैं, और ऐसाही आप स्वयं भी कहते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
नहि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः १४

हे केशव ! तुम जो कुछभी मुझसे कहते हो

मैं इस सबको सत्य मानता हूं, हे भगवन्! आपके स्वरूपको देवता और दानव कोई भी नहीं जानते ॥ १४ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

हे पुरुषोत्तम! हे सम्पूर्ण प्राणियों के उत्पन्न-कर्त्ता! हे सब प्राणियोंके ईश्वर! हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! आपही अपने आत्माको आत्म-ज्ञानके द्वारा देखते हैं ॥ १५ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्याह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वंव्याप्यतिष्ठसि

हे नाथ! अपनी संपूर्ण दिव्यविभूतियों को तुम मेरे प्रति वर्णन करो, जिन विभूतियों के द्वारा संपूर्ण लोकोंको व्याप्तकरके तुम स्थित होरहे हो ॥ १६ ॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया १७

इस अवश्य होनेवाली बातमें तुम्हें शोच करना योग्य नहीं ॥ २७ ॥

अव्यक्तादीनिभूतानि व्यक्तमध्यानिभारत
अव्यक्तानिधनान्येवतत्रकापरिदेवना॥२८॥

हे भारत ! यह सब प्राणी जन्म लेने से प्रथम अव्यक्त थे (अर्थात् इनका नाम रूप कुछभी नहीं था) और मृत्यु होजाने के पीछे भी अव्यक्तही होजायंगे, केवल जन्म और मरण के मध्यही में व्यक्त हुए से दीखते हैं अतएव इनके लिये विलाप करना वृथा है ॥ २८ ॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति-
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥ २९ ॥

कोई मनुष्य तो इस आत्माको आश्चर्यकी समान

देखता है, तथा अन्य पुरुष आत्माको आश्चर्यकी समान वर्णन करता है, एवं अन्य पुरुष इसको आश्चर्यकी समान श्रवण करताहै परंतु देखकर, कहकर और सुनकर भी इस आत्मा को कोई जान नहीं सक्ता ॥ २९ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानिनत्वंशोचितुमर्हसि

हे भारत ! यह आत्मा नित्य (अर्थात् सदा वर्तमान) और अवध्य (मारेजाने के अयोग्य) होकर समस्त प्राणियों के शरीरमें वर्तमान होरहा है, इस कारण तुझे किसीभी प्राणी के लिये सोच करना उचित नहीं ॥ ३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्यनाविद्यते

हे अर्जुन ! तुम अपने क्षत्रिय धर्म को देखकर

कम्पायमान होनेके योग्य नहीं हो, क्योंकि क्षत्रियों के लिये धर्मयुद्ध के अतिरिक्त और कुछ कल्याण-कारी नहीं अर्थात् क्षत्रियों का कल्याण धर्मयुद्ध ही से होता है ॥ ३१ ॥

यदृच्छयाचोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनःक्षत्रियाःपार्थलभंतेयुद्धमीदृशम् ॥

हे पार्थ ! स्वयंही प्राप्तहुए और खुलेहुए स्वर्ग के द्वार स्वरूप ऐसे युद्धमें लड़कर क्षत्रिय लोग सुखको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यंसंग्रामं न करिष्यसि ।
ततःस्वधर्मंकीर्तिं च हित्वापापमवाप्स्यसि

हे अर्जुन ! अब जो तू धर्मके अनुकूल (प्राप्तहुए) इस युद्धको नहीं करेगा तौ अपने धर्म और कीर्ति इन दोनोंको खोकर केवल पापही को भोगेगा ॥ ३३ ॥

अकीर्तिंचापिभूतानिकथयिष्यंतितेऽव्ययाम्

सम्भावितस्यचाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते३४

और सब लोग बहुत दिनोंतक तुम्हारे अपयश को कहते रहेंगे, तथा प्रतिष्ठित पुरुषके लिये वह अपयश मरणसेभी अधिक है ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वांमहारथाः ।
येषांचत्वंबहुमतोभूत्वायास्यसिलाघवम् ॥

हे अर्जुन ! भय के कारण युद्ध करने से तुझ विमुख हुएको यह महारथी जोकि–तुझे बड़ा (बली) समझ रहे हैं, उनकी दृष्टि में तू हलका होजायगा ॥ ३५ ॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्तितवाहिताः
निन्दन्तस्तवसामर्थ्यंततोदुःखतरंनुकिम् ३६

औरतुम्हारे शत्रुभी तुम्हारी शक्तिकी निन्दा करके बहुत से कुवाच्य भी कहेंगे, भला इससे अधिक

१—सम्भावित कहँ अपयश लाहू ।
मरण कोटिसम दारुण दाहू ॥

तुम्हारे लिये और क्या दुःख होगा ? ॥ ३६ ॥
हतोवाप्राप्स्यसिस्वर्गंजित्वावाभोक्ष्यसेमहीम्
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ३७
इस युद्ध में यदि मारेजाओगे तो स्वर्गकी प्राप्ति होगी और यदि जयको प्राप्त होजाओगे तो पृथिवी के (राज्यसुख को भोगोगे) इस कारण हे कुंती-नन्दन ! युद्ध करने के लिये निश्चय करके उठो ३७
सुखदुःखेसमेकृत्वा लाभालाभौजयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवंपापमवाप्स्यसि॥
हे अर्जुन ! सुख और दुःख, हानि और लाभ तथा जय और पराजय को समान मानकर युद्ध करने के लिये उद्यत होओ ! इसप्रकार युद्धकरके तुमको पाप नहीं लगेगा ॥ ३८ ॥
एषातेऽभिहिता सांख्येबुद्धिर्योगे त्विमांशृणु
बुद्ध्यायुक्तोययापार्थकर्मबन्धंप्रहास्यसि ॥
हे अर्जुन ! सांख्य अर्थात् परमार्थ वस्तुके ज्ञान

के विषय में यह उपदेश हमने तुमसे वर्णन किया, अब योग के विषय में इस आगे कहे हुए ज्ञानको सुनो, इस ज्ञान से युक्त होकर तुम कर्मबन्धन से मुक्त होजाओगे ॥ ३९ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्तिप्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्यधर्मस्यत्रायतेमहतोभयात्४०

जिस निष्काम कर्मरूप धर्माचरणका यदि पूरा आचरण भी न होसके तौभी इसका नाश नहीं होता इस कर्म में न्यूनता रहजाने से भी कुछ दोष नहीं लगता, तथा इस धर्म का थोड़ासा भी आचरण बड़ेभारी भयसे रक्षा करताहै ॥ ४० ॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखाह्यनंताश्चबुद्धयोऽव्यवसायिनाम्

हे कुरुनन्दन ! जिनकी प्रवृत्ति उद्योग करने में नहीं है तिनकी बुद्धि अनेक प्रकार की और अनेक

मार्गोंमें चलनेवाली होती है, परन्तु इन सबमें से उद्योग करने में लगी हुईही एकबुद्धि श्रेष्ठ कहाती है॥

यामिमांपुष्पितांवाचं प्रवदंत्यविपश्चितः।
वेदवादरताःपार्थनान्यदस्तीतिवादिनः ४२
कामात्मानः स्वर्गपराजन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलांभोगैश्वर्यगतिंप्रति॥४३॥

हे अर्जुन ! जो स्वर्गादिक फल प्राप्तिका वर्णन करने वाले वेदवाक्यों से प्रसन्न हैं, तथा कर्म-काण्ड के अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तु को भी न माननेवाले, अनेक प्रकारकी कामनाओं से कर्म करने में प्रवृत्त हुए एवं स्वर्ग की प्राप्ति करने में प्रवृत्त ऐसे अज्ञानी पुरुषभोग और ऐश्वर्यकी प्राप्ति के द्वारा जन्म के कर्मफलको देनेवाली और अनेक प्रकार के कर्म करने से फैली हुई वाणीको विस्तार करके कहते हैं॥ ४२॥ ४३॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिकाबुद्धिःसमाधौनविधीयते॥

जिनका चित्त भोग और ऐश्वर्य में लगरहा है, तथा कर्मकाण्डोंमें जिनका चित्त आसक्त होरहाहै, उनकी बुद्धि तत्वज्ञानका साधन होकर समाधिमें स्थित नहीं होती ॥ ४४ ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वोनित्यसत्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान्

यह वेद त्रिगुणात्मक सांसारिक कर्मों को प्रकाश करनेवाले हैं (अर्थात्—सकाम पुरुषों के लिये कर्म फलकी प्राप्ति का वर्णन करते हैं) परन्तु हे अर्जुन ! तू तो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से रहित निष्काम हो तथा निर्द्वन्द्व होकर सदा पराक्रमका अवलम्बन करके, प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा और अप्राप्त वस्तुकी चिन्ताको त्याग कर आत्मा का विचार कर ॥ ४५ ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषुवेदेषु ब्राह्मणस्यविजानतः ४६

स्वल्प जलवाले सरोवरों से जो (स्नान और पानादि) एक २ काम सिद्ध होते हैं, वे काम प्रभूत जलवाले जलाशयोंसे अनायासही में होजाते हैं, समस्त वेदों के जानने से होनेवाले (स्वर्गादिक की प्राप्तिरूप) वे काम ब्रह्मज्ञानी को सहजही में प्राप्त होजाते हैं ॥ ४६ ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन ।
माकर्मफलहेतुर्भूर्मातेसंगोस्त्वकर्मणि॥४७॥

हे अर्जुन!केवल कर्म करनेही में तुम्हारा अधिकार है, उनका फल भोगने में तुम्हारा अधिकार नहीं, तू कर्म के फलोंका हेतु (अर्थात्-फल पाने की इच्छा करनेवाला) मत बनै, और कर्म न करने में तेरी प्रवृत्ति न हो (अर्थात्-कर्म तो कर परन्तु

उन के फलकी कामना मत करे)॥ ४७ ॥

योगस्थःकुरुकर्माणि संगंत्यक्त्वाधनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योःसमोभूत्वासमत्वंयोगउच्यते

हे धनंजय ! एक परमात्माही में चित्त लगाकर संग (अर्थात्—मैं करता हूं इस अहंकार) को त्यागकर कार्य की सिद्धि और असिद्धि को समान मान के सब कर्म करो, चित्तको समान करनेही का नाम योग है ॥ ४८॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौशरणमन्विच्छ कृपणाःफलहेतवः ४९

हे अर्जुन ! केवल कर्मही का आचरण करना ज्ञान योगसे अत्यन्त निकृष्ट है (अर्थात्—सकाम कर्मों से निष्काम कर्म श्रेष्ठ है) इसकारण ज्ञान (अर्थात् निष्काम कर्म करने) में मनको लगाओ जो पुरुष सकाम कर्म करते हैं,वे अधम कहातेहैं ४९

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाययुज्यस्वयोगःकर्मसुकौशलम्॥

आत्मज्ञान से युक्त पुरुष इस संसार में पुण्य और पाप इन दोनों कर्मों को त्याग देता है इस कारण योग (निष्काम कर्म) करने के लिये उद्योग करो,क्योंकि—कर्मों के विषय ज्ञानकी योजना करने को योग कहते हैं॥ ५० ॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हिफलं त्यक्त्वामनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदंगच्छंत्यनामयम् ॥

ज्ञानयुक्त बुद्धिमान् पुरुष कर्मसे उत्पन्न हुए फलों का त्यागकर जन्म और मरणरूप बन्धनसे मुक्त होके परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

यदातेमोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदागंतासिनिर्वेदंश्रोतव्यस्यश्रुतस्यच ॥५२

हे अर्जुन ! जब तुम्हारी बुद्धि अज्ञानरूप मलको

त्यागदेगी, तव तुम सुनेहुए और सुनने के योग्य (सकाम कर्मों) से विरक्त होजाओगे ॥ ५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्नाते यदास्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥

हे अर्जुन ! जिस समय अनेक प्रकार के वेदवाक्यों से भ्रांतिको प्राप्त हुई तुम्हारी बुद्धि निश्चल होकर समाधि (ब्रह्मका मनन करने) में लगेगी उस समय तुम्हें योग की प्राप्ति होगी ॥ ५३ ॥

अर्जुन उवाच ।

स्थितप्रज्ञस्यका भाषा समाधिस्थस्यकेशव ।
स्थितधीःकिंप्रभाषेत किमासीतव्रजेतकिम्॥

अर्जुन ने पूछाकि—

हे केशव ! समाधि में स्थितहुए और जिसकी बुद्धि निश्चल है ऐसे पुरुषका क्या लक्षण है ? निश्चल बुद्धि वाला पुरुष किस प्रकार बोलता, बतलाता है ? कैसे बैठता और कैसे चलता है ? ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रजहातियदाकामान्सर्वान्पार्थमनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते

श्रीभगवान् बोले कि—

हे अर्जुन ! मनुष्य जिस समय अपने मनमें प्राप्तहुई समस्त कामनाओं को त्यागकर आत्म-मनन करके अपने आत्माही में संतुष्ट होजाताहै उस समय स्थितप्रज्ञ (निश्चल बुद्धिवाला) कहा जाताहै ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनः सुखेषु विगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ५६

जिस पुरुषका चित्त दुःखमें उद्विग्न नहीं होता और जो सुखों में आसक्त नहींहै, एवं जिसके प्रेम, भय और क्रोध यह सबदूर होगयेहैं, उसी मनन-शील (विचारवान्) को स्थितप्रज्ञ (निश्चल बुद्धिवाला) कहते हैं ॥ ५६ ॥

यःसर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्यशुभाशुभम्
नाभिनंदतिनद्वेष्टितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता।५७।

जिसका सांसारिक किसी भी वस्तु में प्रेम नहीं है, तथा जो पुरुष शुभ (अनुकूल) पदार्थ को पाकर प्रसन्नता एवं अशुभ (प्रतिकूल) वस्तु को पाकर खेद नहीं मानते उन्हींकी बुद्धि निश्चल है अर्थात् उन्हीं को तत्त्वज्ञानी कहते हैं ॥ ५७ ॥

यदासंहरतेचायं कूर्मोङ्गानीव सर्वशः।
इंद्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता॥

जैसे कच्छप अपने सम्पूर्ण अंगों को समेट लेताहै, ऐसेही ज्ञानी पुरुष जिस समय अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके रूप आदि विषयों से हटा-लेताहै, तब उसकी बुद्धि निश्चल होजातीहै ॥५८॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जंरसोप्यस्य परंदृष्ट्वा निवर्तते।५९।

जो पुरुष विषयोंका सेवन नहीं करता उसके विषय तो स्वयंही नाश होजाते हैं, परन्तु उनमें अभिलाषा वनीही रहतीहै और जिसकी बुद्धि स्थिर है उसको विषयोंकी अभिलाषभी नहीं रहती, क्यों-कि–उसको परब्रह्मका दर्शन होजाताहै ॥ ५९ ॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इंद्रियाणिप्रमाथीनि हरंतिप्रसभंमनः ॥६०॥

हे कुन्ती के पुत्र ! यह वलवान् इन्द्रियें प्रयत्न करने वाले विज्ञानी के भी मनको बलात्कार से चलायमान् कर देतीहैं ॥ ६० ॥

तानिसर्वाणि संयम्य युक्त आसीतमत्परः
वशेहियस्येंद्रियाणितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता६१

उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को जीतकर योगयुक्त होके मेरे ही में मन लगाए रहना चाहिये जिसकी समस्त इन्द्रियें वशमें होजाती हैं उसी की बुद्धि प्रतिष्ठित (निश्चल) कही जाती है ॥ ६१ ॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायतेकामःकामात्क्रोधोऽभिजायते

विषयोंका चिंतवन करने से पुरुषको उनमें प्रेम उत्पन्न होजाता है, प्रीति (आसक्ति) से भोगनेकी कामना और कामना से क्रोध उत्पन्न होताहै, अर्थात् उस कामना में विघ्न पड़जानेसे क्रोध अवश्य होता है ॥ ६२ ॥

क्रोधाद्भवतिसंमोहःसंमोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति

क्रोध से अज्ञान, अज्ञान होनेसे सत्पुरुषों के उपदेश का स्मरण न रहना, स्मृतिके नाशसे बुद्धि का भी नाश होजाता है और बुद्धि का नाश होजाने से सवकाही नाश होजाता है॥६३॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

जो पुरुष राग द्वेषसे रहित हुई अपने स्वाधीन इन्द्रियों करके विषयोंको भोगता है, वह जितेन्द्रिय शांतिको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिःपर्यवतिष्ठते॥६५॥

इस पुरुषको शांति प्राप्त होजानेपर सम्पूर्ण दुःखों का नाश होजाताहै और शांत चित्तवाले पुरुषकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होजातीहै अर्थात्—ब्रह्म में लगजातीहै ॥ ६५ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नचायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतःशांतिरशान्तस्यकुतःसुखम्

जिस पुरुषका चित्त स्वाधीन नहीं उसको बुद्धि (अर्थात्—आत्मविषयक ज्ञान) उत्पन्न नहीं होता और उस पराधीन इन्द्रियवाले पुरुष से विचारभी नहीं होसक्ता, जोपुरुष विचार नहीं करता उसको

शांतिकी प्राप्ति भी नहीं होती और जिसका चित्तही
शांत नहीं उसको (मोक्षरूप) सुख कहां॥ ६६ ॥
इन्द्रियाणांहिचरतां यन्मनोनुविधीयते ।
तदस्यहरतिप्रज्ञांवायुर्नावमिवाम्भसि ॥
विषय भोगमें प्रवर्तहुई इन्द्रियों में से जौनसी
इन्द्रियकी ओरको मन जाताहै, वोही इन्द्रिय पुरुषकी
बुद्धिको इस प्रकार हरलेती(अर्थात् विषयों में डुबो-
देती है) जैसे प्रचण्ड पवन जल में नावको निमग्न
करदेती है ॥ ६७ ॥
तस्माद्यस्यमहाबाहोनिगृहीतानिसर्वशः ।
इंद्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता॥
हे महाबाहो ! इसकारण जिस पुरुषने अपनी
इन्द्रियोंको विषयोंमें से सर्वथा हटालिया है, उसी
की बुद्धि स्थिर होती है ॥ ६८ ॥
यानिशासर्वभूतानांतस्यां जागर्तिसंयमी ।

१ "दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम् " ॥

यस्यांजाग्रतिभूतानिसानिशापश्यतोमुने:
॥ सम्पूर्ण प्राणियोंकी जो ज्ञानरूप रात्री है उसमें जितेन्द्रिय (ज्ञानीपुरुष) जाग्रत् रहते हैं, और जिस विषय भोगादिकरूप रात्री में सम्पूर्ण प्राणी जागतेहैं आत्मज्ञानियोंकी वही रात्री है, तात्पर्यार्थ यह है कि—ज्ञानी पुरुष सांसारिक दु:खरूप अन्धकार में बुद्ध रहते हैं, अर्थात् उन दु:खों से लिप्त नहीं होते और जिन सांसारिक सुखोंमें अज्ञानी लोग आसक्त रहते हैं,उनको ज्ञानी पुरुष अंधकाररूप रात्री समझते हैं ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं-
समुद्रमाप:प्रविशन्ति यद्वत्॥
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे-
सशांतिमाप्नोति न कामकामी॥

जिस प्रकार परिपूर्णतासे भरेहुए समुद्रमें जल

चारों ओर से आकर प्रवेश करते हैं, परन्तु वह अपनी मर्यादाको नहीं त्यागता, ऐसेही जो पुरुष विषयोंके प्राप्तहोने परभी उनमें आसक्त नहीं होता उसीको शांति प्राप्त होती है, और भोगकी कामना वाले को शांति प्राप्त नहीं होती ॥ ७० ॥

विहायकामान्यः सर्वान्पुमांश्चरतिनिस्पृहः।
निर्ममोनिरहङ्कारःसशांतिमधिगच्छति ॥

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर इच्छारहित, ममता और अहंकार रहित होजाता है वही पुरुष शांति को प्राप्त होता है॥ ७१ ॥

एषा ब्राह्मीस्थितिःपार्थ नैनांप्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेपिब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादेसांख्ययोगो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे पार्थ ! हमने जिस प्रकार वर्णन कियाहै यह
ब्रह्मरूप निष्ठाहै, इस (ब्रह्मरूप) स्थितिको प्राप्त
होकर प्राणी मोह को प्राप्त नहीं होता, अन्तके स-
मयभी इस ब्रह्मरूप स्थिति में स्थित होकर प्राणी
मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ ७२ ॥

इतिश्रीभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन उवाच ।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

अर्जुन बोला कि—

हे असुरारि ! यदि तुम्हारे मत में सकाम कर्म
की अपेक्षा ज्ञानही श्रेष्ठ माना गया है तो फिर हे

केशव ! मुझे इस घोर कर्म करने के लिये क्यों प्रवृत्त करतेहो ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येनबुद्धिं मोहयसीवमे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥

हे भगवन् ! ज्ञान और कर्म दोनोंकी प्रशंसा करके आप मेरी बुद्धिको मोहित करते हैं, इस कारण दोनोंमें से एकका निश्चय करके मुझे उपदेश करो कि–जिससे मेरा कल्याणहो ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

लोकेऽस्मिन्द्विविधानिष्ठापुराप्रोक्तामयाऽनघ ।
ज्ञानयोगेनसांख्यानां कर्म योगेन योगिनाम् ॥

श्रीभगवान् बोले कि–

हे निष्पाप ! प्रथम मैंने इस लोक में दो प्रकार की स्थिति (ब्रह्मनिष्ठा) वर्णन करी, अर्थात् ज्ञान योग के द्वारा तौ सांख्यशास्त्र के जाननेवालों की, और कर्म योग करके योगियों की निष्ठाहोती है॥ ३॥

कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
चसंन्यसनादेवसिद्धिंसमधिगच्छति॥४॥

हे अर्जुन ! कर्मों के विना किये पुरुष को ज्ञान
ी प्राप्ति नहीं होती, और केवल संन्यास लेलेने
। से मोक्ष की भी प्राप्ति नहीं होती ॥ ४ ॥

हि कश्चित्क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत् ।
ार्यतेह्यवशः कर्मसर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

हे पार्थ ! बिना कर्म किये कोई भी पुरुष किसी
ी अवस्था में कदाचित् ठहरही नहीं सक्ता, क्योंकि
ाणमात्र प्रकृतिजनित रागादि गुणों करके परवश
होकर कर्म करने में प्रवृत्त रहते हैं ॥ ५ ॥

कर्मेन्द्रियाणिसंयम्ययआस्तेमनसास्मरन् ।
इंद्रियार्थान्विमूढात्मामिथ्याचारःसउच्यते

जो पुरुष कर्मेन्द्रियों को रोककर मन में विषयों
का स्मरण करता रहता है, उस मन्दबुद्धि को
दुराचारी कहते है ॥ ६ ॥

यस्त्विन्द्रियाणिमनसानियम्यारभतेऽर्जुन
कर्मेंद्रियैःकर्मयोगमसक्तःसविशिष्यते॥७॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष मन और ज्ञानेन्द्रियां रोक कर कर्मेन्द्रियों के द्वारा कर्म करता और में आसक्त नहीं होता है, वह सब से (ज्ञानवान्) कहाजाता है ॥ ७ ॥

नियतं कुरुकर्मत्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्राऽपिचतेनप्रसिध्येदकर्मणः॥८॥

हे धनंजय ! तुम कर्मोंको अवश्यही करो क्योंकि—कर्म न करने से कर्म करना श्रेष्ठ है,और कर्म न करने से शरीर का निर्वाह भी नहीं हो सक्ता है ॥ ८ ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्रलोकोऽयंकर्मबन्धन
तदर्थंकर्मकौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥९॥

ईश्वर प्राप्तिके निमित्त किये हुए कर्मोंके अति

क्त और सब कर्म संसारके लिये बंधन हैं, हे
तिनंदन! इसकारण कर्मों में आसक्तिको त्याग-
कर कर्म करो ॥ ९ ॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

सृष्टिकी आदिमें प्रजापति ब्रह्माजी ने यज्ञरूप
कर्म करने वाली सृष्टि (ब्राह्मणों) को उत्पन्न
करके उन से कहा कि–इस यज्ञरूप कर्मके द्वारा तुम
उत्पत्ति करो, येही यज्ञ तुम्हारी समस्त कामनाओं
को पूर्ण करेगा ॥ १० ॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

हे ब्राह्मणों! तुम यज्ञों के द्वारा (हविके भा-
गादि से) देवताओं को प्रसन्न करो। और संतुष्ट
हुए वे देवता (वर्षा आदि से) तुम्हारा पालन
करें, इस प्रकार परस्पर एक दूसरे का पालन पोषण

करके परम मंगल को प्राप्त होओगे ॥ ११ ॥

इष्टान्भोगान्हिवोदेवादास्यन्तेयज्ञभावित
तैर्दत्तानप्रदायेभ्योयो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।

यज्ञ करने से संतोषको प्राप्त हुए देवता तुम्हा
लिये सम्पूर्ण अभीष्ट भोगोंको देंगे । देवताओं
के दियेहुए अन्न को जो पुरुष (पंचयज्ञादि करके
दूसरे को विनादिये भक्षणकरता है वह चोरहै १

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तोमुच्यन्तेसर्वकिल्बि[1]
भुञ्जते तेत्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्

जो पुरुष बलिवैश्व देवादिक यज्ञ से शेष ब
हुए अन्नादिक को भोजन करते हैं, वे सम्पूर
पापों से छूटजाते हैं और जो केवल अपनेही लि
पाक करते हैं, वे अधम पुरुष पापका भक्षण क
रते हैं ॥ १३ ॥

१—कर्मकिल्बिषैरित्यपि पाठान्तरम् ॥

न्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
ज्ञाद्भवतिपर्जन्यो यज्ञःकर्मसमुद्भवः॥१४॥

सम्पूर्ण प्राणी अन्नही से उत्पन्न होतेहैं, वह न्न वर्षा से और वर्षा यज्ञ करने से होती है, वं यज्ञ कर्म करने से उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

र्म ब्रह्मोद्भवंविद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
स्मात्सर्वगतंब्रह्मनित्यंयज्ञेप्रतिष्ठितम् १५

वह कर्म वेद से उत्पन्न हुआ है और अवि- ाशी ब्रह्म से वेदकी उत्पत्ति हुई है, इस कारण र्वव्यापक ब्रह्म को सर्वदा यज्ञ में प्रतिष्ठित आ जानो ॥ १५ ॥

वं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
घायुरिंद्रियारामो मोघंपार्थसजीवति ॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष इस प्रकार प्रवृत्त हुए कर्म प चक्र के ऊपर नहीं चलता, इन्द्रियों के सुख

में रमे हुए उस पापी पुरुषका जीवन वृथा है १६

यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येवचसन्तुष्टस्तस्यकार्यंनाविद्यते १७

जिस पुरुष का आत्माही में प्रेम है, जो आत्मा के सुख से तृप्त है और आत्माही के विषैं संतुष्ट है उसके लिये और कोई कर्त्तव्य कर्म नहीं है ॥ १७ ॥

नैवं तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्यसर्वभूतेषुकश्चिदर्थव्यपाश्रयः १८

उस मनुष्य के कर्म करने और न करने से कोई भी लाभ (और हानि) नहीं है, उस ज्ञानी पुरुष को सम्पूर्ण प्राणीमात्र में मोक्ष के लिये किसी कीभी शरण लेने की आवश्यकता नहीं है ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोतिपूरुषः १९

हे अर्जुन ! इस कारण कर्म के फलकी इच्छा
त्यागकर निरन्तर कर्म करो, क्योंकि–निष्काम
[करने से परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति
ो है ॥ १९ ॥

र्मणैवहि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
कसंग्रहमेवापिसंपश्यन्कर्तुमर्हसि २०॥ ।

जनक आदिक अनेकों महात्मा पुरुष कर्म
केही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, इस प्रकारके सां-
ारिक वर्त्तावको देखकर भी कर्म अवश्य करना
हिये ॥ २० ॥

यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥
यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

जन२कामों को श्रेष्ठ पुरुष करते हैं, और पुरुष
उन्हीं उन कर्मोंका आचरण करते हैं । महा-
ष जिस २ को श्रेष्ठ मानते हैं और पुरुष भी
ो को श्रेष्ठ मानते हैं ॥ २१ ॥

नमेपार्थास्तिकर्तव्यंत्रिषुलोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एवच कर्मणि॥२२॥

हे पार्थ! यद्यपि त्रिलोकी में मुझे कुछ भी कर्तव्य नहीं है, क्योंकि—प्राप्त होने के योग्य कोई भी वस्तु नहीं जो मुझे प्राप्त न हो, तथापि मैं कर्म करने में प्रवृत्त होरहा हूं॥ २२॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः
ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याःपार्थसर्वशः॥२

हे अर्जुन! यदि मैं आलस्य को त्यागकर कर्म करने में प्रवृत्त न होऊं तौ सम्पूर्ण मनुष्य चारों ओर से मेरेही मार्ग पर चलने लगेंगे, अर्थात्—मेरा आचरण देखकर सभी कर्म करना त्यागदेंगे॥२३॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्मचेदहम्
संकरस्यचकर्तास्यामुपहन्यामिमाःप्रजाः२

यदि मैं कर्म न करूं तौ सब पुरुष (धर्मसे

नष्ट होजावें इसी कारण वर्णसंकर प्रजाका कर्त्ता
और प्रजाका हनन करनेवाला होजाऊंगा, अर्थात्
में भ्रष्ट होजाने से प्रजा वर्णसंकर होजायगी, वर्ण-
संकर होजाने से प्रजाका नाश होजायगा इन सबका
कारण मैंही रहूंगा, क्योंकि—मुझेही कर्म करने
में विरक्तहुआ देखकर मनुष्यकर्म करनाछोड़देंगे २४

सक्ताःकर्मण्यविद्वांसोयथाकुर्वन्तिभारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥

हे अर्जुन ! जिस प्रकार अज्ञानी पुरुष कर्म में
आसक्त होकर कर्म करते हैं, ज्ञानी पुरुष संसार
की मर्यादाको स्थिर रखने के अर्थ उसी प्रकार
कर्मों को करते तो हैं परन्तु उनमें आसक्त नहींहोते॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणिविद्वान्युक्तःसमाचरन्॥

कर्म करने में प्रवृत्तहुए अज्ञानी पुरुषों की बुद्धि

में ज्ञानी पुरुषों को भेद उत्पन्न नहीं करना चाहिये किन्तु ज्ञानी पुरुष स्वयंभी योगयुक्त होकर शुभकर्मों का आचरण करता हुआ उनसे कर्म कराता रहै॥

प्रकृतेःक्रियमाणानिगुणैःकर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्माकर्ताहमितिमन्यते२७॥

यद्यपि यह सम्पूर्ण कर्म प्रकृति जनित सत्व रज तमरूप गुणों करके किये जाते हैं, परन्तु–अहंकार करके इन्द्रियों में आत्मबुद्धि माननेवाला मूर्ख पुरुष यह समझता है, कि–मैंही करताहूं ॥२७॥

तत्त्ववित्तुमहाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणागुणेषुवर्तन्तइतिमत्वा न सज्जते॥२८॥

हे महाबाहो ! इसी कारण तत्वज्ञानी पुरुष आत्माको गुण और कर्मके विभाग से भिन्न जानकर प्रकृति के गुण (बुद्धि आदिक) स्वाभाविकही गुणों (विषयों) में प्रवृत्त होते हैं ऐसा जानता है,

अतएव उनमें आसक्त नहीं होता ॥ २८ ॥
कृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
ानकृत्स्नविदोमन्दान्कृत्स्नविन्नविचालयेत्
जो अज्ञानी पुरुष प्रकृतिके सत्त्व रज तम इन
ुणों करके मोह को प्राप्त होकर इन्द्रिय और उनके
ोगने के योग्य देहादि के व्यापार में आसक्त
ोजाते हैं, आत्मज्ञानी पुरुष को उचित है कि-
न मन्दबुद्धियों को कर्म करने से विमुख न करै ॥
ायिसर्वाणिकर्माणिसंन्यस्याध्यात्मचेतसा।
नेराशीर्निर्ममोभूत्वा युध्यस्वविगतज्वरः॥
हे अर्जुन ! इसकारण ज्ञानकी दृष्टिसे सम्पूर्ण
र्मों को मेरे अर्पण करके उनका फल भोगने की
ामना ममता और शोक को त्यागकर युद्ध करो ॥
े मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तोमुच्यन्तेतेऽपिकर्मभिः

जो मनुष्य दोषदृष्टिको त्यागकर श्रद्धापूर्वक
मेरे इस मतका नित्य आचरण करते हैं, वेभी
अवश्यही कर्मरूप बन्धनसे मुक्त होजाते हैं॥३१॥
येत्वेतदभ्यसूयन्तोनानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धिनष्टानचेतसः॥
और जो पुरुष दोषदृष्टि से मेरे मतका आच-
रण नहीं करते, हे अर्जुन ! उनको सम्पूर्ण ज्ञानो
से शून्य, मूर्ख और नष्ट हुआ जानो ॥ ३२ ॥
सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतियान्तिभूतानि निग्रहः किंकरिष्यति
ज्ञानी पुरुषभी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्ट
(अर्थात्–कर्म) करता है,क्योंकि–सम्पूर्णही प्राण
अपनी प्रकृति के अनुसार वर्ताव करते हैं, उनक
निग्रह (अर्थात् शिक्षा) क्या करेगा ॥ ३३ ॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ३४

सम्पूर्णही इन्द्रियोंका स्वभाव है कि–अनुकूल विषय में राग (प्रेम) और प्रतिकूल विषय में द्वेष होता है, पुरुषको उनके अधीन होना न चाहिये क्योंकि–यह राग और द्वेष पुरुषके (मोक्ष मार्गमें) विघ्न करनेवाले हैं ॥ ३४ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

दूसरों के धर्मका पूर्णतया आचरण करने की अपेक्षा अपना धर्म यदि थोड़ाभी बनपड़े तौ श्रेष्ठ है क्योंकि–अपने धर्ममें प्राण त्यागकर देनाभी श्रेष्ठ (कल्याणकारी) है, और दूसरोंका धर्म भय (नरक) का देनेवाला है ॥ ३५ ॥

अर्जुनउवाच ।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

अर्जुनने पूछाकि–

हे वार्ष्णेय[1] ! यह पुरुष यद्यपि स्वयं पाप करने की इच्छा नहीं करता, तथापि-वह पुरुष किसकी बलात्कार प्रेरणासे युक्त होकर पाप करता है ३६

श्रीभगवानुवाच ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

श्रीभगवान् बोले कि–

यह काम और क्रोध रजोगुणसे उत्पन्न

१–कोई २ महाशय तो 'वार्ष्णेय' शब्दका वृष्णि–कुलोत्पन्न अर्थ करते हैं, परन्तु–श्रीशंकरानन्द कृत व्याख्या में लिखा है कि–ब्रह्मानन्दरूप अमृत वर्षाने वालेको 'वृष्णि' कहते हैं उनके द्वारा जाननेयोग्य (परमात्मा) को 'वार्ष्णेय' कहते हैं ॥

होते हैं, यह काम अनेक प्रकारके उपभोगोंसे भी शान्त नहीं होता, और पापरूप है, इस संसारमें हे अर्जुन ! इसको अपना शत्रु जानो ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार धूम अग्निको, और मल दर्पण को आच्छादन करलेता है, तथा जिस प्रकार जरायु[1]से गर्भमें स्थित हुवा बालक आच्छादित रहता है इसी प्रकार कर्मसे ज्ञानभी वेष्टित रहता है॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥ ३९॥

हे कुन्तिनन्दन ! अग्निकी समान कभी भी तृप्त न होने वाले इस काम (इच्छा) रूप शत्रुने

१-जो चर्म गर्भको चारोंओर से लपेटे रहता है उसे जरायु कहते हैं।

ज्ञानी पुरुषोंको चारोंओरसे ढकरक्खा है ॥३९॥

इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥४०॥

इन्द्रिय, मन और बुद्धि यह तीन कामनाके निवासस्थान कहेजाते हैं, इन्हीं के द्वारा यह कामना ज्ञानका आवरणकरके मनुष्यको मोहित करलेती है ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्४१

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! इस कारण तुम प्रथम इन्द्रियोंको स्वाधीन करके पापरूपी तथा शास्त्रज्ञान और आत्मज्ञानके नाशकरनेवाले काम (इच्छा) का जय करो ॥ ४१ ॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परंमनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः॥४२॥

देहादिक स्थूल पदार्थोंसे इन्द्रिय पर (सूक्ष्म

वा श्रेष्ठ) हैं, इन्द्रियोंसे मन, मनसे बुद्धि और बुद्धिसे भी आत्मा सूक्ष्म(और श्रेष्ठ) है॥४२॥

एवं बुद्धेः परंबुध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ४३

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे महाबाहो ! इस प्रकार आत्माको बुद्धिसे परे जानकर और मनको निश्चल करके कठिनता से जीतनेके योग्य इस कामनारूप शत्रुका जय करो॥

इति श्रीभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः



श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् १

श्रीभगवान् बोले कि—

हे अर्जुन ! मैंने प्रथम इस अव्ययज्ञानको सूर्यसे कहा, सूर्यने अपने पुत्र मनुसे और मनुने इक्ष्वाकु राजासे वर्णन किया ॥ १ ॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयोविदुः ।
सकालेनेह महता योगोनष्टः परन्तप ॥२॥

हे अरिमर्दन ! इसप्रकार क्रमानुसार प्राप्त हुए इस अक्षय ज्ञानको राजर्षियोंने पाया, तदनन्तर चिरकाल पीछे वह ज्ञान नाश होगया ॥ २ ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ३

वोही प्राचीन योग हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, क्योंकि—तुम हमारे भक्त और मित्र हो तथा यह उत्तम ज्ञान भी परम गोपनीय है॥३॥

अर्जुनउवाच ।

अपरं भवतोजन्म परंजन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति॥

अर्जुनने कहा कि—

हे कृष्ण ! सूर्यका जन्म तौ आपके जन्मसे बहुतही प्रथम हुआ था,तौ फिर मैं यह कैसे जानूं कि-सृष्टिके प्रारम्भमें सूर्यको आपने यह ज्ञान दिया था ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥५॥

श्रीभगवान् बोले कि—

हे शत्रुनिकन्दन ! तुम्हारे और हमारे बहुतसे जन्म हुए हैं, हे अर्जुन ! उन सब (जन्मों)को मैं तो जानता हूं परंतु तुम नहीं जानते ॥ ५ ॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् । प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

यद्यपि मैं जन्म-मरणरहित और सम्पूर्ण प्राणियोंका ईश्वर भी हूं, तथापि-अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर अपनी मायाकरके जन्म लेताहूं ६

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ७

हे भारत ! जिस २ समय धर्मकी हानि और अधर्मकी उन्नति होती है, उसी उस समयमें अवतार धारण करता हूं ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! साधु-सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टों का विनाश करनेके लिये तथा सनातनधर्मकी

स्थिति करनेके अर्थ मैं प्रत्येक युगमें जन्म लेताहूं॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैतिमामेतिसोऽर्जुन९

हे अर्जुन ! जो ज्ञानी पुरुष इस प्रकार मेरे जन्म और कर्मको भली प्रकार दिव्य जानता है वह शरीर त्यागकर फिर जन्मधारण नहीं करता किन्तु मुझे प्राप्त होजाता है ॥ ९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवोज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः १०॥

जिनके प्रीति, भय और क्रोध यह सब निवृत्त होगये हैं,जो समस्त संसारको मेरा ही रूप जानते और मेरीही उपासना करते हैं, ऐसे अनेकजन ज्ञान और तपसे पवित्र होकर मेरेही रूपको प्राप्त होजाते हैं ॥ १० ॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ११

हे अर्जुन ! जो पुरुष जिस भावसे मेरा-भजन करते हैं,मैं भी उनको उसी भावके अनुसार फल देता हूं । क्योंकि—समस्त मनुष्य सर्वथा मेरेही मार्गपर चलते हैं, अर्थात् मुझेही प्रसन्न करने को सब प्रकारके भक्तिभाव करते हैं ॥ ११ ॥

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इहदेवताः
क्षिप्रंहि मानुषेलोके सिद्धिर्भवति कर्मजा १२

इस संसार में कर्मसिद्धिकी कामना करतेहुए अनेक पुरुष देवताओंकी पूजा करते हैं, क्योंकि मनुष्यलोकमें कर्मसे उत्पन्न हुई सिद्धि शीघ्रही प्राप्त होजाती है ॥ १२ ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपिमां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

गुण और कर्म के विभागोंसे मैंने चारों

वर्णोंको उत्पन्न करा है, अतएव मैं उनका कर्त्ता भी हूं तथापि मुझ अविनाशीको उनका अकर्त्ता जानो ॥ १३ ॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

मुझे कर्म स्पर्श नहीं करते, और मुझे कर्मके फल में कामना भी नहीं है, जो पुरुष मेरे स्वरूपको इस प्रकार जानताहै, उसको कर्मरूप बन्धन नहीं बाँधसक्ते

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।१५॥

इसप्रकार (आत्माको अकर्त्ता और अभोक्ता जानकर जनकादिक) प्राचीन मुमुक्षुपुरुषोंने भी कर्म करे हैं, इसीकारण हे अर्जुन ! जो पुराने मुमुक्षुओंने कर्म करे हैं उन्हींको तुमभी करो१५।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्रमोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्

हे अर्जुन ! (कर्त्तव्य) कर्म क्या हैं ? और अकर्त्तव्य कर्म कौनसे हैं ? इस विषयमें बुद्धिमान् भी मोहित हो जाते हैं । इसकारण मैं उसी कर्मको तुमसे वर्णन करता हूं जिसे जानकर दुःखरूप संसारसे मुक्त होजाओगे ॥ १६ ॥

कर्मणोह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहनाकर्मणोगतिः॥१७॥

हे अर्जुन ! विहितकर्म, निषिद्धकर्म और अकर्म (कर्मसे मुक्त रहना) इन तीनोंका तत्त्व अवश्य जानना चाहिये, क्योंकि-कर्मकी गति परम कठिन है ।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

✓ जो कर्मों में अकर्म और अकर्मोंमें कर्म देखता है, सम्पूर्ण मनुष्योंमें बुद्धिमान् वह पुरुष समस्त कर्मोंका करनेवाला योगी है ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुःपण्डितंबुधाः १९

जिस पुरुषके सम्पूर्ण उद्योग कामनाके सकल्पसे रहित हैं, और जिसके सम्पूर्ण कर्म ज्ञानरूप अग्निसे भस्म होगये हैं, पण्डित लोग उसीको ज्ञानी कहते हैं

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तोनिराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥

जो पुरुष कर्मोंके फलमें आसक्तिको त्याग कर सदा तृप्त और निराश्रय रहता है, वह पुरुष कर्म करनेमें प्रवृत्त हुवा भी कुछ नहीं करता है ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलंकर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥

हे अर्जुन ! जिसने सम्पूर्ण कामनाओंको त्याग दिया है, जिसका चित्त और आत्मा स्वाधीन है, जो बंधन के कारणोंको छोड़कर केवल

शरीरकी स्थिति के अर्थ कर्म करता है, वह पुरुष कर्मकरके भी पापका भागी नहीं होता ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतोविमत्सरः।
समःसिद्धावसिद्धौच कृत्वापि न निबध्यते॥

जो प्राणी स्वयं प्राप्तहुई वस्तुसे सन्तुष्ट हो जाता है ऐसा और सुख दुःखादि द्वन्द्वोंका सहन करने वाला तथा जो मत्सरतारहित है, एवं अर्थकी सिद्धि और असिद्धि में जिसका चित्त समान रहता है, वह पुरुष कर्मकरके भी उनमें नहीं बँधता ॥ २२ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

जो निष्काम और रागद्वेषसे मुक्त है, और जिसके चित्तकी वृत्ति ज्ञानमें लगरही है,वो पुरुष यदि यज्ञके लिये कर्मानुष्ठान करै तो भी उसके कर्म सब नाश होजाते हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना २४

आहुति देना और ब्रह्मरूप होता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्निमें होनेवाला हवनभी यह सब ब्रह्मरूपही है और यज्ञादि शुभकर्मोंके द्वारा जो स्वर्गादिक की प्राप्ति होती है वह भी ब्रह्मही है, जिस पुरुष की कर्मोंमें इस प्रकार चित्तवृत्ति लगरही है, वह ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

कोई २ योगी देवताओंके उपदेशसे यज्ञादिक कर्म करते हैं और अन्य योगीपुरुष ब्रह्मरूप ही हविका हवन करते हैं अर्थात् समाधि के द्वारा जीवात्माको परमात्मामें लय करते हैं ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥

कितने ही योगी संयमरूप अग्निमें श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकी आहुति देते हैं, और कितने ही पुरुष शब्दादिक विषयोंको श्रोत्रादिक इन्द्रियों में आहुति देते हैं ॥ २६ ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥

कितने ही योगी आत्माके संयमरूप अग्निको ज्ञान केद्वारा प्रदीप्त करके उसमें समस्त इन्द्रियोंके कर्मोंकी और प्राणों के कर्मोंकी आहुति देते हैं॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥२८

कोई पुरुष दानरूप यज्ञ करते हैं, कोई २ तपरूप यज्ञ करते हैं, कोई योगरूप यज्ञ करते हैं, कोई पुरुष वेदपाठरूपी यज्ञ करते हैं और कोई २ ज्ञानी पुरुष दृढ़व्रतरूप यज्ञ करते हैं ॥ २८ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणोऽपानं तथाऽपरे।
प्राणापानगतीरुद्ध्वाप्राणायामपरायणाः२९

कोई२ ज्ञानीपुरुष प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणायाम करनेमें तत्पर रहके अपानमें प्राणका और प्राणमें अपानका हवन करते हैं२९

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदोयज्ञक्षपितकल्मषाः ३०

कोई२ मनुष्य नियमित भोजन करनेवाले बनकर प्राणोंमें प्राणोंका यज्ञ करते हैं, यह सब यज्ञ करने वाले ज्ञानी पुरुष यज्ञोंके द्वारा अपने पापोंको दूर करते हैं ॥ ३० ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यःकुरुसत्तम

हे कुरुसत्तम ! जो पुरुष इसप्रकार यज्ञसे शेषबचे हुए अमृतरूप अन्नका भोजन करते हैं, वे सनातन

ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। यज्ञरहित मनुष्यको यह मनुष्य-
लोक भी प्राप्त नहीं होता तो फिर परलोक कैसे
मिल सक्ता है ? ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितताब्रह्मणोमुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे

हे अर्जुन ! इस भांति वेदमें अनेक प्रकारके
यज्ञ वर्णन किये गये हैं, उन सबको कर्मसे उत्पन्न
हुआ जानो, ऐसा जानने से तुम्हारी मोक्ष होजायगी।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाद् ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ३३

हे परन्तप ! द्रव्यमय (दानरूप) यज्ञसे ज्ञान-
रूप यज्ञ श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि—हे पार्थ !
जितने कर्म हैं, ज्ञान होजानेपर वे सब समाप्त
होजाते हैं ॥ ३३ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ३४

हे अर्जुन ! गुरुको प्रणाम करके वारम्वार पूछने से और सेवा करनेसे उस ज्ञानकी प्राप्ति होगी क्योंकि—तत्त्वज्ञानी पुरुष वारम्वार प्रश्नादिक करने ही से ज्ञानका उपदेश करेंगे ॥ ३४ ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथोमयि ३५

हे पाण्डुनन्दन ! उस ज्ञानको पाकर फिर तुम इस प्रकार मोहको प्राप्त नहीं होओगे, और उसी ज्ञानके द्वारा संपूर्ण प्राणियोंको मुझसे और अपनेसे अभिन्न देखोगे ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥३६॥

यदि तुम अन्य सम्पूर्ण पापियोंकी अपेक्षा अधिकतर पापी भी हो तौ भी इस ज्ञानरूप नौका

के द्वारा पापरूप समुद्रको अनायास हीसे तरजाओगे।
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।
हे अर्जुन! जिस प्रकार प्रज्वलित हुई अग्नि प्रभूत ईंधन को भस्म करदेती है, इसी प्रकार ज्ञान-रूप अग्नि समस्त कर्मोंको भस्म करदेती है ३७
नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।
इस लोकमें ज्ञानकी समान दूसरी कोई भी वस्तु पवित्र नहीं है, उस ज्ञानको योगके द्वारा शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष विचार करते२ चिरकालमें स्वयं ही आत्मामें प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥
श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानंलब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति
जितेन्द्रिय, ज्ञानमें निष्ठा करने वाला और श्रद्धालु पुरुष ही ज्ञानको प्राप्त होता है, और

ज्ञानमाप्त होजाने पर तुरंत ही परमशान्तिको प्राप्त होजाता है ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

जो पुरुष अज्ञानी, श्रद्धारहित और सदा सन्देह करने वाले हैं, वे नाशको प्राप्त होजाते हैं, जिस पुरुष को सदा सन्देह बना रहता है उसे इसलोक और परलोकमें सुखकी प्राप्ति नहीं होती ४०

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नान्ति धनंजय ४१

हे धनंजय ! जिन पुरुषोंने योगके द्वारा अपने सम्पूर्ण कर्मोंको परमेश्वरके अर्पण करादिया है, और जिनके समस्त सन्देह ज्ञानके द्वारा छिन्न भिन्न होगये हैं, ऐसे आत्मज्ञानी पुरुषको कर्म नहीं बाँधते ॥ ४१ ॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ४२

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानयोगो नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस कारण हे अर्जुन! अपने हृदयमें उत्पन्न हुए अज्ञानजनित सन्देहको ज्ञानरूप खड्ग से छेदन करके योगका आश्रय लेकर युद्ध करने के लिये उठो॥ ४२

इति श्रीभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुनउवाच ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि
यच्छ्रेयएतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १

अर्जुनने पूछा कि–

हे श्रीकृष्ण ! आप कर्मोंके त्याग और उन कर्मोंके अनुष्ठान इन दोनोंही की प्रशंसा करते हैं, इन दोनोंमेंसे जो श्रेष्ठ हो उसका निश्चय करके मुझसे कहो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तुकर्मसंन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते॥२॥

श्रीभगवान् बोले कि–

हे अर्जुन ! यद्यपि कर्मोंका त्याग और कर्मानुष्ठान यह दोनोंही मुक्तिके देने वाले हैं, तथापि कर्म त्यागनेकी अपेक्षा कर्मोंका करना श्रेष्ठ है ॥२॥

ज्ञेयः सनित्यसंन्यासी योन द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्द्वोहि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ३

जो किसीसे द्वेष नहीं करता, और किसीकी

कामना नहीं करता, वोही पूरा सन्न्यासी है, महावाहो ! सुख दुःखसे रहित वह पुरुष सहजहीं में सांसारिक वन्धनसे मुक्त होजाता है ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्वालाःप्रवदन्ति न पण्डिता
एकमप्यास्थितःसम्यगुभयोर्विन्दतेफलम् ४

सांख्य (अर्थात्—ज्ञानपूर्वक कर्मों का त्याग) और कर्मयोग, इन दोनोंको अज्ञानी पुरुष भिन्न भिन्न कहते हैं, तथा पण्डित (ज्ञानी पुरुष) एक ही कहते हैं, क्योंकि इन दोनोंमेंसे एकका भी आश्रय करलेनेसे मनुष्यको दोनोंका फल मिल जाता है ॥ ४ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यंच योगं च यः पश्यति सपश्यति

जो मोक्षरूप स्थान सांख्य (ज्ञानी) सन्न्या

१--प्राप्यते, इत्यपि पाठः ॥

सियोंको प्राप्त होता है, उसी स्थानको कर्मयोगी
भी प्राप्त होते हैं इस कारण सांख्य (कर्मोंके
त्याग) और कर्मयोगको जो पुरुष समान देखता
है, उसीका देखना यथार्थ है ॥ ५ ॥

सन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति॥६

हे महाबाहो ! योगके विना किये सन्न्यासकी
प्राप्ति होना महाकठिन है और योगकरके युक्त
हुए मुनिको ब्रह्मकी प्राप्ति शीघ्रही होजाती है॥६॥

योगयुक्तोविशुद्धात्माविजितात्माजितेन्द्रियः
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ७

जो पुरुष योगकरके युक्त और शुद्ध चित्त-
वाला है जिसने आत्मा और इन्द्रियोंको जीत
लिया है, तथा जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने
आत्माकी समान जानता है, वह प्राणी कर्म
करता हुआ भी कर्मवन्धनोंसे नहीं बँधता ॥ ७ ॥

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तोमन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन
प्रलपन्विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्९

योगकरके युक्त तत्त्वज्ञानी पुरुष देखता, सुनता, स्पर्श करता, सूँघता, भोजन करता, चलता, शयन करता और श्वास लेता हुआ; तथा बोलता, त्यागता, ग्रहण करता, नेत्रोंको खोलता और बंद करता हुआ भी, इन्द्रियें अपने२ विषयोंमें प्रवृत्त रहती हैं, ऐसा निश्चयकरके मैं कुछ भी नहीं करता ऐसा निश्चय कर लेता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वाकरोतिय:
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा १०

जो पुरुष कर्मोंके फलकी कामनाको त्यागकर उन(कर्मों)को ब्रह्मके अर्पण करके कर्म करता है,

यह प्राणी पापसे इसप्रकार लिप्त नहीं होता जैसे कमलका पत्र जलसे लिप्त नहीं होता ॥१०॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये

हे अर्जुन ! योगी पुरुष कर्मफलकी कामनाको त्यागकर आत्मशुद्धिके अर्थ मन बुद्धि अथवा केवल इन्द्रियोंही से कर्म करते हैं ॥ ११ ॥

युक्तःकर्मफलंत्यक्त्वाशान्तिमाप्नोतिनैष्ठिकीम्
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तोनिबध्यते ॥

योगनिष्ठ पुरुष कर्मफलकी कामनाको त्यागकर (कर्म करनेसे) मोक्षरूप शान्तिको प्राप्त होता है और योगरहित पुरुष फलकी कामनामें आसक्त होनेके कारण कामनाकरके बंधनमें पड़जाता है॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्नकारयन्॥ १३॥

जितेन्द्रिय पुरुष मनसे समस्त कर्मोंको त्याग कर नौ द्वारवाले इस देहरूपी नगरमें न तो कुछ स्वयं करता और न किसीसे कुछ कराता हुआ सुखसे निवास करता है ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

परमेश्वर किसीके कर्तृत्व, कर्म और कर्मके फलोंको उत्पन्न नहीं करता, किन्तु स्वभाव (अज्ञान) ही कर्तृत्व आदि रूपसे प्रवृत्त होता है ॥१४॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥१५

सर्वव्यापक परमेश्वर किसी जीवके पाप और पुण्यको ग्रहण नहीं करता, अज्ञानके द्वारा ज्ञान ढका रहता है, इसी कारण प्राणी मोहित हुए रहते हैं ॥ १५ ॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥१६

जिन पुरुषों का वह अज्ञान आत्मज्ञानके द्वारा नाशको प्राप्त होगया है, उनको वह आत्मज्ञान सूर्यकी समान प्रकाश करता है॥ १६॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः१७

जिन प्राणियोंने अपनी बुद्धि और आत्माको परमेश्वरमें लगा रक्खा है, जिनकी परमेश्वरमें निष्ठा है और जो ब्रह्मपरायण हैं, वे ज्ञानके द्वारा संपूर्ण पापोंको धोकर प्रकृतिके सम्बन्धरहित मोक्षको प्राप्त होजाते हैं॥ १७॥

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनिचैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः१८

ज्ञानी पुरुष विद्या और विनयसे अलंकृत हुए

ब्राह्मण, गौ, हस्ती और श्वान तथा चाण्डाल इन सबको समान दृष्टिसे देखते हैं, अर्थात्—तत्त्वज्ञानी पुरुष सबको ब्रह्मरूप ही देखते हैं ॥ १८ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषंहि समंब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः

जिन ज्ञानियोंका चित्त सम्पूर्ण आत्माओंमें समानतासे स्थित है, उन्होंने इसी लोकमें संसार का जय करलिया और वे ही ज्ञानी पुरुष, ब्रह्म के विषैं स्थित हैं, क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सबमें समान है ॥ १९ ॥

नप्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसंमूढोब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥

जो ज्ञानीजन प्रिय वस्तुको पाकर प्रसन्न और अप्रिय वस्तुको पाकर उद्विग्न नहीं होते, वेही निश्चल बुद्धिवाले और मोहरहित ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म में स्थित हैं ॥ २० ॥

ह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते २१॥

जो पुरुष आत्माको बाह्यविषयों से रोककर आत्मामें सुख पाता है, ब्रह्मज्ञान के द्वारा जिसका चित्त परमात्मामें लगरहा है वही ज्ञानी पुरुष अक्षयसुख (मोक्ष) को प्राप्त होता है, अर्थात् एकान्तमें विचार करने से मोक्षकी प्राप्ति होती है॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनयएव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः२२

हे कुन्तीनन्दन ! तत्त्वज्ञानी पुरुष इन्द्रियजनित भोगोंमें आसक्त नहीं होता, क्योंकि ये भोग दुःखदायी और नाशवान् हैं ॥२२॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं सयुक्तः ससुखी नरः २३

शरीर त्यागनेसे प्रथम जो पुरुष इसी लोक में काम क्रोधादिकके उद्वेगसे उत्पन्न हुए वेगको

रोकनेके अर्थ समर्थ है, वही पुरुष योगकरके युक्त और सुखी है ॥ २३ ॥

योऽन्तःसुखोन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः
सयोगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥

जो पुरुष आत्मा ही में सुखी है, और आत्मा ही में रमण करता है, तथा जिसका आत्माही में प्रकाश है, योगकरके युक्त वही ज्ञानी पुरुष ब्रह्म- स्वरूप होकर ब्रह्ममें लय होजाता है ॥ २४ ॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधायतात्मानः सर्वभूतहिते रताः २५

जिनके पाप और सन्देह नाश होगये हैं ऐसे, तथा सब प्राणियोंके हितमें लगे हुए आत्मज्ञानी पुरुष ब्रह्ममें लीन होजाते हैं ॥ २५ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितोब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥

जिनके काम और क्रोध दूर होगये हैं ऐसे

हे योगिराज ! सदा चिन्तवन करता हुआ मैं आपको किस प्रकार जानूँ ? हे भगवन् ! कौन२ से पदार्थोंमें मुझे आपका चिन्तवन करना चाहिये॥

विस्तरेणात्मनोयोगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतोनास्ति मेऽमृतम्

हे दुष्टसंहारी ! अपने योग और ऐश्वर्यको फिर विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन करो, क्योंकि अमृत की समान आपके चरित्रों को सुनते२ मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्याह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तोविस्तरस्य मे॥

श्रीभगवान् बोले कि-

हे अर्जुन ! मैं अपनी मुख्य२ विभूतियोंका तुमसे वर्णन करता हूं क्योंकि मेरी अत्यन्त विस्तृत विभूतियों का अन्त नहीं है ॥ १९ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च२०॥

हे गुडाकेश[१] ! मैं समस्त प्राणियोंके मध्यमें स्थित रहने वाला आत्मा हूं, तथा मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंका आदि, मध्य और अवसान अर्थात्—उत्पत्ति, पालन और विनाश करने वाला हूं ॥ २० ॥

आदित्यानामहंविष्णुर्ज्योतिषांरविरंशुमान्
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥

हे अर्जुन ! मैं बारहों आदित्यों में विष्णु, प्रकाश करने वाले पदार्थों के बीच में सहस्रकिरणधारी सूर्य, उणचास पवनों के मध्य में मरीचि और नक्षत्रों में चन्द्रमा हूं ॥ २१ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना

चारों वेदों में सामवेद, देवताओं में इन्द्र

१—निद्राको जय करने वाले ! अर्थात्—हे निरालस्य !

इन्द्रियों के मध्य में मन और संपूर्ण प्राणियों में चैतन्यता (सत्ता) मैं ही हूं ॥ २२ ॥

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्

एकादश रुद्रोंमें शङ्कर, यक्ष और राक्षसोंमें कुबेर, वसुओंके बीचमें अग्नि, तथा पर्वतों में सुमेरु पर्वत मैं ही हूं ॥ २३ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः २४

हे पार्थ ! पुरोहितों के मध्य में मुख्य (पुरोहित) बृहस्पतिरूप मुझे ही जानो, सेनापतियों में स्वामिकार्तिकेय और संपूर्ण जलाशयों में सागर मैं ही हूं ॥ २४ ॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः

सब ऋषियोंमें भृगु, (सार्थक) शब्दोंमें एक

अक्षर (ओम्)यज्ञोंमें जपरूप यज्ञ,तथा स्थावरोंमें हिमालय पर्वत मैं ही हूं ॥ २५ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानांकपिलोमुनिः॥

मैं सम्पूर्ण वृक्षोंमें अश्वत्थ (पीपल), देवर्षियोंमें नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूं ॥ २६ ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्२७

हे अर्जुन ! मुझे अश्वों के बीचमें अमृतके अर्थ सागर मथने के समय उत्पन्न हुआ उच्चैःश्रवा, हाथियों में ऐरावत और मनुष्यों में राजारूप मुझही जानो ॥ २७ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः

आयुधों में वज्ररूप, गौओंमें कामधेनु, प्रजा

उत्पन्न करने वाला कामदेव, तथा सर्पोंमें वासुकि मैं ही हूं ॥ २८ ॥

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणोयादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् २९

नागोंमें शेषरूप, जलचरोंमें वरुणस्वरूप, पितरों में अर्यमा और दण्ड देनेवालों में यमरूप मैं ही हूं ॥ २९ ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणांच मृगेन्द्रोहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥

मैं दैत्यों में प्रह्लाद, गणना करनेवालों में काल, मृगोंमें मृगेन्द्र (सिंह), और पक्षियोंके मध्यमें गरुड़ हूं ॥ ३० ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणांमकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी

१—श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य्यने 'नाग' शब्दका 'नराकारसर्प' अर्थ लिखा है और महावधूत श्रीसुखानन्दनाथने 'बहुतफणवाले सर्प' अर्थ किया है ॥

पवित्र करनेवालोंमें (वा निरन्तर वेगसे चलनेवालोंमें) पवन, शस्त्रधारियोंमें रामचन्द्र[1], मत्स्यों में मकर, तथा नदियोंमें जहुकन्या गङ्गाजी मैं ही हूं ॥ ३१ ॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादःप्रवदतामहम्

हे अर्जुन ! सृष्टिका उत्पन्न, पालन और संहार करने वाला मैं ही हूं, सब विद्याओंमें वेदान्तविद्या, और वादकरने वालों में तर्क भी मैं ही हूं ॥ ३२ ॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वःसामासिकस्य च
अहमेवाक्षयः कालोधाताहंविश्वतोमुखः॥

मैं ही अक्षरों में अकार,समासोंमें द्वन्द्व समास

१-किन्हीं २ टीकाकारोंने 'रामः' का 'परशुराम' अर्थ लिखा है।

२-'धाताविश्वतोमुखः' का कर्मफल देनेवाला, और 'ब्र का रचयिता' भी अर्थ किसी २ ने किया है।

नाशरहित काल (समय) और चतुर्मुख ब्रह्मा हूं ॥ ३३ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्त्तिःश्रीर्वाक्चनारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा

सबका प्राण हरनेवाला मृत्यु, उत्पन्न होने वाले पदार्थों का उत्पत्ति स्थान, स्त्रियोंमें कीर्त्ति, लक्ष्मी, वाणी, स्मृति, बुद्धि, धारणाशक्ति और क्षमा मैं ही हूं ॥ ३४ ॥

बृहत्साम तथासाम्नां गायत्रीछन्दसामहम्
मासानां मार्गशीर्षोहमृतूनां कुसुमाकरः ॥

मैं सामगायनों में बृहत्सामरूप, छन्दों (वेद मन्त्रों) में गायत्रीरूप, मासोंमें मार्गशीर्ष, और ऋतुओं में वसन्त ऋतु हूं ॥ ३५ ॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोस्मि व्यवसायोस्मि सत्त्वंसत्त्ववतामहम्

छल करनेवालों में द्यूत, तेजस्वियोंमें साक्षात्

तेजःस्वरूप, (जयप्राप्त करनेवालों में) जय, (उद्योगियों में) उद्योग तथा पराक्रमियों में पराक्रमस्वरूप भी मैं ही हूं ॥ ३६ ॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥

यदुवंशियों में वासुदेव,पाण्डुवंशियों में अर्जुन, मुनियों के बीच में व्यासजी और कवियों के मध्य में शुक्र भी मैं ही हूं ॥ ३७ ॥

दण्डोदमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्॥

दमन करने वालों में दण्डरूप, शत्रुओं के जयकी कामना करनेवालों में नीति, गोप्य (छिपाने के योग्य) पदार्थों में मौन और ज्ञानी पुरुषों में ज्ञानरूप मैं ही हूं ॥ ३८ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्

हे अर्जुन ! संपूर्ण प्राणियों का बीज (कारण)

जो है वह मैं ही हूं, चर और अचरों के बीच में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो मुझसे भिन्न हो ॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एषतूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरोमया ॥४०॥

हे परमतपस्वी! मेरी अलौकिक विभूतियों का अन्त नहीं है, उन विभूतियों का जो यह विस्तार वर्णन करा है यह भी संक्षेप ही से कहा है ॥४०॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

जो २ ऐश्वर्यवान्, श्रीमान्, अथवा किसी प्रकार के चमत्कार से युक्त हैं, हे अर्जुन! उन सबको तुम मेरेही अंश से उत्पन्न हुआ जानो ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितोजगत्॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगोनाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

१-ज्ञानेनेत्यपि पाठभेदः ॥

अथवा हे अर्जुन ! तुम्हें बहुत ज्ञानों के उप-देश करने से क्या है ? तुम इतना समझलो कि-मैं इस सम्पूर्ण संसारको एक अंश से व्याप्त करके स्थित होरहा हूं ॥-४२॥

इतिश्रीभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

अर्जुनउवाच ।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतोमम १

अर्जुन बोले कि-

हे भगवन् ! मेरे ऊपर कृपाकरके आपने जो अध्यात्म नामक परमगोपनीय वचन कहे उनसे मेरा (आत्म विषयक) अज्ञान दूर होगया ॥१॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशोमया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपिचाव्ययम्

हे कमलनयन ! प्राणियोंका जन्म और विनाश आपही से होता है, यह बात मैंने विस्तारपूर्वक सुनी, और आपका अविनाशी माहात्म्य भी मैंने सुना ॥ २ ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥

हे परमेश्वर ! आपने अपने आत्मा को जिस प्रकार का वर्णन करा वास्तव में वैसा ही है, परंतु हे पुरुषोत्तम ! मैं आपके उस ईश्वरीयरूपको देखनेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो
योगेश्वर ततोमे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ४

हे प्रभो ! यदि आप मुझे उस श्रेष्ठ स्वरूप के देखने के योग्य समझें तो हे योगिराज ! उस नाशरहित अपनी आत्मा का दर्शन कराओ ॥४॥

श्रीभगवानुवाच ।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।

नाना विधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च

श्रीभगवान् बोले कि–

हे पार्थ ! अनेक प्रकार के वर्ण और आकृति (सुरत) वाले, अलौकिक मेरे सैंकड़ों और हजारों रूपोंको तुम देखो ॥ ५ ॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥६॥

हे भारत ! सूर्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, तथा मरुद्गण और प्रथम कभी न देखेहुए बहुत से आश्चर्यों को तुम देखो ॥ ६ ॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ७

हे गुडाकेश ! इस मेरे शरीर के एक स्थान में स्थितहुए चराचर (स्थावर, जंगम) सहित सम्पूर्ण संसार को देखो, और भी जो कुछ देखने की तुम्हारी कामना हो सो सब देखो ॥ ७ ॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुःपश्य मे योगमैश्वरम्८

परन्तु हे अर्जुन ! तुम इन नेत्रोंसे मेरे स्वरूपको नहीं देखसक्ते हो,इसकारण मैं तुमको दिव्यदृष्टि देता हूं उनमें तुम मेरे ऐश्वर्ययोगको देखना।८

सञ्जयउवाच ।

एवमुक्त्वा ततोराजन्महायोगेश्वरोहरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥

संजय बोले कि-

हे महाराज धृतराष्ट्र ! इसप्रकार कहनेके अनन्तर महायोगिराज श्रीकृष्ण भगवान्ने अर्जुनको अपना उत्कृष्ट ईश्वररूप (विराट्रूप) दिखाया९

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ११

अनेकों मुख, बहुत से नेत्र और अनेक प्रकार के अद्भुत दर्शनों करके युक्त, तथा विविध प्रकार के अलौकिक आभूषणोंसे समन्वित और उद्यत हुए अनेकों दिव्य आयुधों सहित, दिव्य पुष्पों की माला और श्रेष्ठ वस्त्र धारण करे, दिव्य सुगन्धियों से लिप्त, संपूर्ण प्रकार के आश्चर्यों का स्वरूप, अन्तरहित, देवस्वरूप और चारों ओर मुखवाला (अपना दिव्यरूप) दिखाया ॥ १० ॥ ११ ॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्यमहात्मनः

यदि आकाश में एक साथही सहस्र सूर्योंका उदय होजाय तौ उन महात्मा भगवान् की कान्ति की समान (तेज) होसक्ता है ॥ १२ ॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा॥ १३ ॥

उस समय अर्जुनने देवाधिदेव श्रीकृष्णचन्द्र के

शरीर के एक भागही में अनेक प्रकारसे स्थित हुए सम्पूर्ण संसारको देखा ॥ १३ ॥

ततः सविस्मयाविष्टोहृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत॥ १४॥

तब आश्चर्ययुक्त और पुलकायमान् होकर अर्जुन ने श्रीकृष्णको प्रणामकर हाथ जोड़के कहा॥

अर्जुनउवाच ।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे,
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

अर्जुन बोले कि–

हे देव ! मैं तुम्हारे शरीर में सम्पूर्ण देवता और समस्त प्राणीमात्र के समूह को, तथा कमलासन के ऊपर स्थित हुए ब्रह्माजी, महादेव, सम्पूर्ण ऋषि मुनि और दिव्य सर्पोंको देखताहूं॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं,
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं,
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

हे विश्वनाथ ! मैं आपके अनेक बाहु, अनेक उदर, अनेक मुख और अनेक नेत्र इसप्रकार चारों ओर से अनन्तरूप देखरहा हूं, हे विश्वरूप ! मैं आपकी आदि, मध्य और अन्त नहीं देखता॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च,
तेजोराशिं सर्वतोदीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७॥

मैं आपको किरीटयुक्त, गदा और सुदर्शन-चक्र धारण करे, तेजके पुञ्ज, चारों ओर से प्रकाशमान, चारों ओर से प्रदीप्त हुई अग्नि और सूर्यकी समान कान्तिमान् अतएव देखने के

अयोग्य और अप्रमेय (प्रमाण करने के अयोग्य) देखता हूं ॥ १७ ॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं,
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता,
सनातनस्त्वं पुरुषोमतोमे ॥ १८ ॥

हे नाथ ! मेरी समझ में आप अविनाशी, परंब्रह्म, जानने के योग्य और इस संसार के परम आधार, सदा एकरूप, सनातनधर्म के रक्षक, अतएव सनातन पुरुष माने गये हो ॥ १८ ॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं,
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९ ॥

हे विश्वेश्वर ! मैं आपको आदि, मध्य और अन्तरहित, अनन्त पराक्रमी, अनन्त भुजाओं सहित, सूर्य, चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं ऐसा, प्रज्व-

लित अग्निकी समान चमकीले मुखवाला और
अपने तेजके द्वारा सम्पूर्ण संसार को तपाते हुए
देखता हूं ॥ १९ ॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि,
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमिदं तवोग्रं,
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

हे महात्मन् ! आकाश और भूमी के मध्य
में अद्वितीय आपने सम्पूर्ण संसार और दिशाओं
को व्याप्त कर रक्खा है, आपके अद्भुत और उग्र
इस रूपको देखकर त्रिलोकी व्यथित होरही है ॥

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति,
केचिद्भीताः प्राञ्जलयोगृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः,
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः २१

---

१ रूपमुग्रं तवेदमित्यपि पाठान्तरम् ।

हे भगवन् ! यह देवसमुदाय भयभीत होकर आपकी शरण में प्राप्त होरहे हैं इन में से कोई२ हाथ जोड़कर आपकी स्तुति करते हैं, महर्षि और सिद्धगण स्वस्ति वचन कहकर सुन्दर २ स्तुतियाँ करके आपकी स्तुति करते हैं ॥ २१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या-
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा-
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

रुद्र, सूर्य, वसु और साध्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, पितर, गन्धर्व, यक्ष, असुर तथा सिद्धसमुदाय यह सब विस्मयको प्राप्त होकर आपको देखते हैं ॥ २२ ॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं,
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं,
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३

हे महाबाहो ! अनेक मुख, अनेक नेत्र, अनेक भुजा, अनेक ऊरू, तथा अनेक चरणवाले एवं प्रभूतउदर और अनेक दन्तों से कराल ऐसे आपके इस महारूप को देखकर सबलोक व्यथा को प्राप्त होरहे हैं, और ऐसे ही मैं भी भयभीत होरहा हूं ॥ २३ ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं,
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा,
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४ ॥

हे विष्णो ! आकाश का स्पर्श करने वाले (अर्थात्) अत्यन्त उन्नत, प्रकाशमान्, अनेक वर्णवाले और जिसका मुख फैल रहा है ऐसे, उज्ज्वल विशाल नेत्र वाले आपके इस स्वरूपको देखकर मेरा अन्तरात्मा अधिक दुःखी होरहा है, अतएव मुझे धैर्य और शान्ति प्राप्त नहीं होती २४

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि,
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म,
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

दंष्ट्रा (करालदाढों) से अति भयानक,प्रलय-काल की समान आपके मुखों को देखकर मैं दिशाओं को नहीं पहिचानता और सुख को प्राप्त नहीं होता, अतएव हे देवाधिदेव ! हे जगन्निवास ! ! आप मेरेऊपर प्रसन्न होओ २५

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः,
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मोद्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ,
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति,
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु,
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

सम्पूर्ण राजाओं करके सहित राजा धृतराष्ट्र के दुर्योधनादिक पुत्र एवं हमारे मुख्य २ योधाओं करके समन्वित भीष्म, द्रोण और कर्ण यह सब वीरपुरुष दाढ़ों से विकराल और भयानक आप के मुखों में अत्यन्त शीघ्रतासे प्रवेश कररहे हैं, और बहुत से वीर आपके दांतों में उलझ रहे हैं, अतएव जिनके शिर भग्न होगये हैं ऐसे दीखते हैं ॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः,
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा-
विशन्ति वक्त्राण्यभितोज्वलन्ति ॥२८॥

जैसे नदियों के बड़े २ जलप्रवाह समुद्र ही में जाके गिरते हैं, ऐसेही यह शूरवीर राजा लोग चारों ओर से प्रकाशमान आपके मुखों में प्रवेश करते हैं ॥ २८ ॥

१—'अभिविज्वलन्ति' इत्यपिपाठः ॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा-
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥ २९॥

जिस प्रकार पतंगे (शलभ) अपनी मृत्युके अर्थ प्रचण्ड हुई अग्निमें अत्यन्त वेगसे प्रवेश करते हैं ऐसेही यह सब वीरजन नाशके लिये वेगपूर्वक आपके मुखमें प्रवेश कर रहे हैं॥ २९॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं,
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो॥३०॥

हे विष्णो! आप भी चारों ओरसे प्रकाशमान मुखों करके संपूर्ण वीरोंको निगलते हुए वारंवार आस्वादन कर रहे हैं, और आपकी प्रचण्ड प्रभा सारे संसारको व्याप्त करके अपने तेजसे तपारही हैं॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो-
नमोस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं,
नहि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

आप ऐसे उग्ररूप कौन हैं ? यह मुझसे कहो, हे देवराज ! मैं आपको नमस्कार करता हूं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होजाइये, संसारके आदि कारण-रूप आपको मैं जाननेकी इच्छा करता हूं, क्योंकि आपकी इस चेष्टा को नहीं जानता ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो-
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे,
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

श्रीभगवान बोले कि-

मैं संसारका विनाश करनेवाला उत्कट काल

हूं, लोकोंका क्षय करने के लिये यहां प्रवृत्त हुआ हूं यदि तुम युद्ध न करोगे तोभी यह जितने योधा सेना में हैं, इनमें से कोई भी नहीं रहैगा ॥१२॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशोलभस्व ,
जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव ,
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ ३३॥

इसकारण (इनको स्वयमेव नष्टहुआ जानकर, तुम उठो और यशको प्राप्तकरो, इन शत्रुओं को जीतकर संपन्न राज्यको भोगो, हे सव्यसाचिन् ! अर्जुन ! मैंने इन योधाओं को प्रथमही हननकर रक्खा है, तुम केवल इनके मारने में निमित्तमात्र बनजाओ ॥ ३३ ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च ,
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।

१--जो वायें हाथसे भली प्रकार वाण चलासक्ता हो उसे सव्यसाची कहते हैं ।

मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा,
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥३४॥

मेरे मारेहुए द्रोणाचार्य, भीष्म जयद्रथ और कर्ण एवं औरर भी योधाओंको तुम मारो, तथा खेद मत करो, (मेरी आज्ञाको मानकर) युद्ध करो, रणमें तुम शत्रुओंका जय करोगे ३४

सञ्जय उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य,
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं,
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

संजय कहने लगे कि—

श्रीकृष्ण भगवान् के ऐसे वचन सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोडकर कांपित होने लगे फिर प्रणाम कर भयभीत होके श्रीकृष्णसे गद्गद होकर कहने लगे ॥ ३५ ॥

अर्जुनउवाच ।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या,
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति,
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥ ३६ ॥

अर्जुनने कहा कि-

हे हृषीकेश ! आपकी कीर्ति से संपूर्ण संसार प्रसन्न और प्रेम में मग्न होता है और राक्षस भयभीत होकर चारों ओर को भाग रहेहैं एवं संपूर्ण सिद्धोंके समुदाय नमस्कार कर रहे हैं यह योग्य ही है ॥ ३६ ॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्,
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास,
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

हे महात्मन ! हे अपरिच्छिन्नरूप ! हे देवराज !

हे जगन्निवास ! आप सबसे महान् और ब्रह्मा के भी आदि कारण हैं एवं सत् तथा असत् से भी जो परे है वह भी आपही अविनाशी हैं, तो फिर वो सिद्धादिक आपको नमस्कार क्यों न करें ? ॥ ३६ ॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यंच परं च धाम,
त्वयाततं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥

हे अनन्तरूप ! आपही आदिदेव हैं, पुराण पुरुष और इस संसार के लयस्थान भी आप ही हैं, सब के ज्ञाता, जानने के योग्य उत्तम वस्तु और परम तेजःस्वरूप भी आप ही हैं, आपने इस संसारको व्याप्त कर रक्खा है ॥ ३८ ॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः,
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।

नमोनमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः,
पुनश्च भूयोऽपि नमोनमस्ते ॥ ३९ ॥

आप वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, ब्रह्मा, और ब्रह्माके प्रपितामहरूप हैं, अतएव आपको सहस्रों नमस्कार हैं और फिर भी बारंबार नमस्कार है ॥ ३९ ॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते,
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं,
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

हे नाथ ! आपका वीर्य और पराक्रम अनन्त है, आपने सम्पूर्ण संसार को व्याप्त कर रक्खा है, इसकारण सर्वात्मक हो, अतएव आपके सन्मुख तथा पीछे एवं चारों ओर से आपको नमस्कार है॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं,
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।

अजानता महिमानं तवेदं,
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि,
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं,
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

हे स्वामिन् ! आपकी महिमा को न जानकर मैंने आपको अपना मित्र मान कर 'हे कृष्ण ! हे यादव ! और हे सखे !' इस प्रकार प्रमाद से वा प्रीतिसे जो कहा, तथा हे अच्युत ! मैंने जो परिहाससे विहार, शय्या, आसन और भोजन के समय अकेले वा मित्रों के सन्मुख आपका अपमान किया हो तिसकी मैं क्षमा मांगता हूं ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य,
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ४३ ॥

आप स्थावर जंगमरूप इस समस्त संसारके पिता, पूज्य और अत्यन्त उत्कृष्ट गुरु हैं, आपका प्रभाव अनुपम है, अतएव त्रिलोकीभर में आप के समान कोई नहीं है, तो फिर आपसे अधिक कहां से होगा ॥ ४३ ॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं,
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः,
प्रियाप्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

हे परमेश्वर ! स्तुति करने के योग्य आपको मैं शिर नवाकर प्रणाम करके यह प्रार्थना करता हूं कि—जिस प्रकार पुत्रके अपराधोंको पिता और जैसे प्यारा मित्र हित करने की कामना से मित्रके अपराधोंको सहता है, ऐसेही आपभी

१—सखेव सख्युः+++प्रियः प्रियायार्हसि, इसका किन्हीं२ ने इसप्रकार खोला है कि–प्रिय (पति) प्रिया (प्यारीस्त्री) के अपराधों को सहन करता है परन्तु— श्रीदुर्गाप्रसादजी लिखते

मेरे अपराधों को सहन करो ॥ ४४ ॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा,
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं,
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

प्रथम कभी न देखे हुए ऐसे आपके रूप को देखकर तो मैं प्रसन्न हूं, और भयसे मेरा मन व्यथा को प्राप्त होरहा है, इस कारण हे देवोंके स्वामी ! हे जगन्निवास ! मुझे वही अपनारूप दिखाओ और मेरे ऊपर प्रसन्न होजाओ ॥४५॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन,
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

है कि—पु॰ देवतादिकोंने श्रीधरस्वामीकी व्याख्यानुसार प्रि
प्रिय की प्रसन्नतार्थ ऐसा व्याख्यान किया है ॥

हे सहस्रबाहो ! मैं आपको उसी प्रकार मुकुट गदा और हाथमें चक्र धारण करे देखने की इच्छा करता हूं, हे विश्वमूर्ते ! (विराट्रूप) आप उसी चतुर्भुजीरूप को धारण करो ॥४६॥

श्रीभगवानुवाच ।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं,
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं,
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

श्रीभगवान् बोले कि-

हे अर्जुन ! मैंने प्रसन्न होकर अपने योगबलसे तुम्हें यह तेजःस्वरूप, अनन्त और आद्य, परम अद्भुत विश्वरूप दिखाया इस मेरेरूपको तुम्हारे अतिरिक्त और किसी ने नहीं देखा ॥ ४७ ॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-

न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवं रूपः शक्य अहं नृलोके,
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

हे कौरवों में श्रेष्ठ ! इस मनुष्यलोक में मेरे इस विराट्रूपको तुम्हारे बिना और कोई भी पुरुष वेदपाठ, यज्ञों के अनुष्ठान, दान, और अग्निहोत्रादिक श्रेष्ठ क्रिया एवं घोर तपो करकेभी देखने को समर्थ नहीं है ॥ ४८ ॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो-
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं,
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

मेरे ऐसे उग्ररूपको देखकर तुम व्यथाको मात मत होओ, और तुम्हारी बुद्धिभी मन्द न होय, तुम भयको दूरकर मनमें प्रसन्न होके फिर मेरे इसी सौम्यरूप के दर्शन करो ॥ ४९ ॥

संजय उवाच ।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा,
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं,
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

संजय बोले कि—

श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन से इस प्रकार कह कर अपना (सौम्य) रूप दिखाया, भगवान् ने सौम्यरूप धारण करके (और विश्वरूपके देखने से भयभीतहुए) अर्जुन को सावधान किया ॥

अर्जुनउवाच ।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ५१

अर्जुन बोले कि—

हे जनार्दन ! मैं आपके सौम्य (देखने में

सुन्दर) इस नरदेह को देखकर चित्तमें प्रसन्न
प्रकृति को प्राप्त हुआ हूं ॥ ५१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवाअप्यस्यरूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥

श्रीभगवान बोले कि—

हे अर्जुन ! तुमने मेरे जिस रूपके दर्शन करे वह परम दुर्लभ है, इस मेरे रूप को देवता भ देखनेकी नित्य इच्छा करते रहते हैं ॥ ५२ ॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्यएवंविधोद्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

जैसे मेरे रूपके तुमने दर्शन किये हैं, ऐसा मेरारूप वेदपाठ, तप दान, और यज्ञ के द्वारा भी देखनेको कोई समर्थ नहीं है ॥ ५३ ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्यअहमेवं विधोऽर्जुन
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४॥

हे परंतप अर्जुन ! विश्वरूप में अनन्य भक्ति और शास्त्रों के तत्त्वों से जानने देखने और मिलने के योग्य हूं ॥ ५४ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः समामेति पाण्डव ५५

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शननामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

हे पाण्डव! जो पुरुष मेरे ही अर्थ शुभकर्म करता, मुझे ही परमगति मानता, और सब कर्मोंमें आसक्तिरहित है एवं किसी से वैर नहीं करता ऐसा मेरा भक्त मुझेही प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

अर्जुनउवाच ।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः १

अर्जुनने कहा कि—

हे श्रीकृष्ण ! जो पुरुष इस प्रकार निरन्तर भक्तियुक्त होकर आपके साकाररूपकी उपासना करते हैं, तथा जो विनाशरहित निर्गुणरूपकी उपासना करते हैं इन दोनों में से अधिक श्रेष्ठ कौनसे भक्त हैं ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनोये मां नित्ययुक्ताउपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥२॥

श्रीभगवान् बोले कि—

हे अर्जुन ! जो पुरुष अपने चित्तको मेरे विषै लगाकर श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्तसे नित्य मेरी उपासनाकरते हैं, वेही भक्त हमारे मतमें श्रेष्ठ मानेगयेहैं

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यञ्च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥३॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥४॥

समस्त इन्द्रियों के समुदाय को स्वाधीन करके सबको अभेददृष्टि से देखनेवाले और सम्पूर्ण प्राणियों के हित करने में निरत होकर जो पुरुष विनाशरहित, अनिर्देश्य(अर्थात् मनुष्यादिशब्दके निर्देश करनेके अयोग्य) अव्यक्त (चक्षु आदि इन्द्रियों से अग्राह्य) सर्वव्यापक,चिन्तवन करने को अशक्य, कूटस्थ (अर्थात् सब काल में एकहीरूप से स्थित), निश्चल और सदा एकरस ऐसे मेरे रूपकी उपासना करते हैं, वे उपासक भी मुझको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥५॥

परन्तु मेरे अव्यक्तरूपमें आसक्तचित्त वाले उपासकों को (अनुष्ठानादि करने में) अधिक क्लेश

होताहै, कारण कि-देहधारियों (देहात्माभिमानियों) को आत्मस्वरूपविषयक चित्तवृत्ति दुःख प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

हे पार्थ! (लौकिक और वैदिक) सम्पूर्ण कर्म्मोंको मेरे विषे अर्पण करके मेरी भक्ति में तत्पर हुए अनन्य भक्तिरूप उपाय करके जो भक्त मेरी उपासना और ध्यान करते हैं,जिन्होंने मेरे विषे चित्त लगा रक्खा है ऐसे उन अपने भक्तोंको मैं मृत्युरूप संसारसागरसे शीघ्रही उद्धार करताहूं॥

मय्येव मनआधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अतऊर्ध्वं न संशयः॥८॥

हे अर्जुन ! तुम अपनेमन और बुद्धिको केवल

मुझे परमेश्वर ही में लगाओ, तो फिर शरीर त्यागने के अनन्तर निश्चय मेरे ही विषे निवास करोगे ॥ ८ ॥

अथ चित्तं समाधातुं नशक्नोषिमयिस्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततोमामिच्छाप्तुं धनञ्जय९

हे धनञ्जय ! और यदि तुम मेरे विषे स्वकीय चित्तवृत्तिको स्थिर करनेको समर्थ नहीं होतो योगाभ्यासके द्वारा मेरे प्राप्त होनेकी इच्छा करो॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमोभव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥

यदि योगाभ्यास करने में भी असमर्थ होओ तो मेरे आराधनरूप श्रेष्ठकर्म करने में तत्पर रहो, मेरे अर्थ कर्म करने से भी तुम परम सिद्धिको प्राप्त होओगे ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुंमद्योगमाश्रितः ।

सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्११

हे अर्जुन! यदि मेरे अर्थ कर्म करने में भी तुम अशक्य होओ तो चित्तवृत्तिको रोककर अनन्य-भाव से मेरा आश्रय लेकर और कर्मों के फलको सर्वथा त्यागके कर्मका आचरण करो ॥११॥

श्रेयोहिज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानंविशिष्यते
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्

क्योंकि—मेरे स्मृतिरूप-अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान और ध्यानसे कर्मफलका त्याग उत्तम है तथा त्यागसे शीघ्रही शान्ति प्राप्त होती है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुणएव च ।
निर्ममोनिरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी १३
सन्तुष्टः सततंयोगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः१४

किसीसे द्वेष न करने वाला, सब प्राणियोंका मित्र,सबके ऊपर दयावान् (देहादिकों में ममता

रहित) अहंकारशून्य, सुख और दुःखको समान मानने वाला, शान्तचित्त, निरन्तर सन्तोषी, योगी (स्थिर चित्तवाला), चित्तको अपने अधीन रखने वाला, (वेदान्तादि शास्त्रों में) दृढ निश्चयवाला, एवं मेरे ही विषै मन और बुद्धिको अर्पण करने वाला जो मेरा भक्त है वही मुझे प्यारा है ॥ १३ ॥ १४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोकोलोकान्नोद्विजते च यः
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः सचमे प्रियः॥१५॥

जिस कर्मनिष्ठ पुरुषसे कोई उद्वेगको प्राप्त न हो, और जो स्वयंभी किसी अन्यसे उद्विग्न न होय तथा जिसने हर्ष, विषाद भय तथा उद्वेग (चित्तके क्षोभ)को त्यागदिया है वही भक्त मुझे प्यारा है ॥ १५ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्षउदासीनोगतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी योमद्भक्तः समे प्रियः १६

किसी भी वस्तु में इच्छा न करने वाला, पवित्र और चतुर, उदासीन, व्यथारहित, तथा फलकी कामनाको त्यागकर कर्म करनेवाला जो मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय लगता है ॥ १६ ॥

योन हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः समे प्रियः

जो (प्रियवस्तुके प्राप्त होनेपर) प्रसन्न न हो, (अप्रिय वस्तुको पाकर) द्वेष न करे, (इष्ट वस्तु के नाशका) शोक नहीं करता, और किसी भी वस्तुके प्राप्त होनेकी इच्छा नहीं करता शुभ और अशुभको त्यागकरके केवल मेरीही भक्ति करने वाला जो मेरा भक्त है वोही मेरा प्यारा है ॥ १७ ॥

समःशत्रौ च मित्रेच तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः १८
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टोयेन केनचित्।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।

शत्रु और मित्र तथा मान और अपमान शीत और उष्ण एवं सुख और दुखमें समानभाव-मानने वाला, सम्पूर्णपदार्थोंमें आसक्तिरहित, निन्दा और स्तुति को समान माननेवाला, मौनी (अर्थात् सत्यबोलनेकी कामनासे स्वल्प संभाषण करनेवाला) जो कुछभी प्राप्त होजाय उसीमें सन्तुष्ट, नियमसे एकही स्थानमें निवास न करने वाला, और स्थिरबुद्धि वाला जो मेरा भक्त है, सब मनुष्योंमें वही मुझे प्यारा है॥ १८॥१९ ॥

ये तु धर्म्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेतीव मे प्रियाः २०

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगोनाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जो मुझहीको सर्वस्व माननेवाले मेरे भक्त इस पूर्वोक्त अमृतकी सामान धर्मरूप उपदेशकाश्रद्धा-

पूर्वक आचरण करते हैं, हे अर्जुन ! वो मुझे अत्यन्तही प्यारे हैं ॥ २० ॥

इति श्रीभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

❋त्रयोदशोऽध्यायः❋



श्रीभगवानुवाच ।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्योवेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञइति तद्विदः १

श्रीभगवान् बोले कि—

हे कुन्तीनन्दन ! इस शरीरको क्षेत्र कहते हैं, और जो इस शरीररूप क्षेत्र को जानता है उसीको क्षेत्रज्ञ कहते हैं, ऐसा क्षेत्रज्ञ पुरुषोंनेही कहा है॥१॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम २

हे भारत ! सम्पूर्ण शरीरमें तुम मुझको क्षेत्रज्ञ

जानो, (क्षेत्र) और क्षेत्रज्ञके यथार्थ ज्ञानही को मेरा सम्मत (ज्ञान) जानो ॥ २ ॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ३

वह शरीरयुक्त क्षेत्र जिसप्रकार का, जिन विकारों से युक्त, जिससे उत्पन्न होनेवाला है, और जैसा है, तथा वह क्षेत्रज्ञ जिन प्रभाओं करके युक्त है वह सब संक्षेप से कहताहूं तुम सुनो ॥

ऋषिभिर्बहुधागीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

इस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके रूपको ऋषि मुनियोंने विविध प्रकारके छन्दों करके तथा युक्तिसहित और सन्देहरहित ब्रह्मप्रतिपादक सूत्रों करके भिन्न २ प्रकारसे वर्णन किया है ॥ ४ ॥

महाभूतान्यहङ्कारोबुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकञ्च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ५

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतनाधृतिः
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥ ६ ॥

पञ्चमहाभूत, अहंकार, बुद्धि, मूलप्रकृति, दश इन्द्रियें, मन और इन्द्रियों के पांच विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख संघात अर्थात् शरीर, चेतना और धैर्य यह सब संक्षेप से क्षेत्रके विकार कहे गये हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसाक्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ७
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ८
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि॥ १० ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्

एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥

अभिमानरहित होना, निष्कपट रहना, अहिंसा, शान्ति, आर्जव (सूधापन) गुरुकी सेवा करना, पवित्रता, स्थिरता और अपने मनका निग्रह करना, (श्रोत्रादि) इन्द्रियों के (शब्दादिक) विषयों में वैराग्य, निरहंकार होना, जन्म, मृत्यु, जरा (वृद्धभाव) व्याधि और दुःख इन में दोष देखना, (स्त्री पुत्रादिकों में) आसक्ति न करना और (उनके सुख दुःखादि में) सुखी दुःखी न होना, इष्ट और अनिष्ट वस्तुके लाभसे सदा एकाकार रहना, मेरेही विषें अनन्यभाव से अव्यभिचारिणी भक्ति करना, एकान्त स्थान में निवास करना (प्राकृत) मनुष्यों की सभामें अरुचि करना, आत्मज्ञान में नित्य निष्ठा करना और तत्त्वज्ञान के प्रयोजन अर्थात्--मोक्षका अवलोकन करना इन सबको ज्ञान कहते हैं और इसके अतिरिक्त और

सब अज्ञान है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परंब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥१२॥

अब जो कुछ जानने के योग्य आत्मस्वरूप है तिसको तुमसे वर्णन करता हूं, जिसको जानकर प्राणी मोक्षको प्राप्त होता है, उस अनादि परब्रह्म को सत् (विद्यमान) और असत्(अविद्यमान) कुछभी नहीं कहा जासक्ता है ॥ १२ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति १३

उसके चारोंओर हाथ, चरण, नेत्र,शिर, मुख और कान हैं, और वह ब्रह्म संसार में सबको व्याप्त करके स्थित होरहा है ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृच १४

यद्यपि वह सम्पूर्ण इन्द्रियोंका आभास अर्थात्

प्रकाशक भी है, तथापि सब इन्द्रियोंके संबन्ध से रहित है, [पुत्रादिकों में] आसक्तिरहित और सकल ब्रह्माण्डोंका धारण तथा पालन करने वाला है, सत्त्व, रज और तम इन गुणों से रहित होकर भी इनका भोक्ता है ॥ १५ ॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥

वह समस्त प्राणियों के बाहर और भीतर विद्यमान तथा जंगम और स्थावररूप है, सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण जाना नहीं जासक्ता, और (अज्ञानियों से) अतिदूर तथा (ज्ञानियों के) अतिनिकट है ॥ १५ ॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णुप्रभविष्णुच१६

वह आत्मा यद्यपि एकही है, तथापि सब प्राणियोंमें भिन्नरूपसे स्थितहुआ दीखता है, और उसको समस्त प्राणियोंका उत्पन्न, पालन

एवं विनाश करने वाला जानो ॥ १६ ॥

ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदिसर्वस्याधिष्ठितम् १७

वह सूर्यादि प्रकाशकोंका भी प्रकाशक और अज्ञानसे परे (अर्थात्-प्रधान ज्ञानस्वरूप) है, हे अर्जुन! ज्ञान, ज्ञान करनेके योग्य और ज्ञानके द्वारा जानने के योग्य भी वोही है, तथा वोही बुद्धि-रूपसे सबकेहृदयमें स्थित है ॥ १७॥

इतिक्षेत्रं तथाज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्तएतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

हे भारत! इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेयका संक्षेपसे हमने वर्णन करा है, इस सब भेदको जान कर मेरा भक्त मेरे पदको प्राप्त होजाता है ॥१८॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्

प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको अनादि जानो

और विकार अर्थात्--शरीरादिकोंको तथा सत्त्वादि गुणोंको प्रकृति से उत्पन्न हुआ जानो ॥१९॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते २०

कार्य (शरीर) कारण (सु– दुःख और मोहादि के साधन इन्द्रिय) इनका उत्पन्न करने में सबका प्रकृतिही कारण कही जाती है। और सुख दुःखके भोगने में पुरुष हेतु है, ऐसा कहा जाता है॥

पुरुषःप्रकृतिस्थोहि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु२१

प्रकृतिके (कार्य) शरीरमें स्थित हुआ वह जीवात्मा प्रकृतिजनित सत्त्वादि गुणोंको (अर्थात् सत्त्व,रज और तम इन गुणोंके सुख दुःख को) भोगता है, तथा गुणोंमें आसक्त रहनाही इसके उच्च और नीच योनिमें जन्मलेनेका कारण है ॥

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ।

परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥

इस देहमें वही जीवात्मा उपद्रष्टा (समीपसे देखनेवाला) अनुमोदन करनेवाला, धारण और पोषण करनेवाला, भोगनेहारा, महेश्वर, परमात्मा और परमपुरुष है ॥ २२ ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्त्तमानोपि न स भूयोभिजायते ॥

जो इस प्रकारके स्वरूप वाले पुरुषको और (विकारादि) गुणों सहित प्रकृतिको जानता है वह सर्वथा व्यवहारमें प्रवृत्त रहकरभी फिर इस संसारमें जन्म धारण नहीं करता ॥ २३ ॥

ध्यानेनात्मनिपश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे २४

कोई पुरुष ध्यान योगके द्वारा अपने देहमें स्थित हुए आत्माका मनसे ध्यान करते हैं, कोई सांख्ययोग और कोई कर्मयोगके द्वारा उस

परमेश्वरका दर्शन करते हैं ॥ २४ ॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्यउपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥

और कोई पुरुष आत्माको मुक्तस्वरूप न जानकर अन्यान्य पुरुषों से (ज्ञानी और गुरुओंसे) श्रवण करके आत्माकी उपासना करते हैं वेभी श्रवणनिष्ठ होकर मृत्यु (जन्म मरणरूप संसारसागरसे) तरजाते हैं ॥ २५ ॥

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ २६

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! स्थावर और जंगम जो कुछ भी उत्पन्न होता है, यह सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोगसे उत्पन्न होता है,ऐसा तुमजानो॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यतिसपश्यति ॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष समस्त प्राणियों में

समानभावसे स्थित हुए और शरीरोंका नाश होने परभी अविनाशी ऐसे परमेश्वरको देखता है वास्तव में यथार्थ देखने वाला (तत्त्वज्ञानी) वही है॥

समंपश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततोयातिपरांगतिम्

जो पुरुष सर्वत्र एकभावसे स्थित हुए परमेश्वर को समानही देखकर मनके द्वारा आत्माको हनन नहीं करता (अर्थात्—अज्ञान से सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माका निरादर नहीं करता) वह परमगति मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं सपश्यति २९

जो मनुष्य समस्त कर्मोंको प्रकृतिके द्वारा करे हुए और आत्माको सबका अकर्त्तारूप देखता है, वास्तव में वही यथार्थ देखता है ॥ २९ ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।

नभएव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ३०

जब ज्ञानी पुरुष भिन्न २ प्राणियों को एक परमात्मा में स्थित हुए देखता है, तब वह ब्रह्म-को प्राप्त होजाता है ॥ ३० ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः
शरीरस्थोपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ३०

हे कुन्तीकुमार ! यह आत्मा अविनाशी और निर्गुण होने के कारण विकाररहित है,यह आत्मा शरीरमें स्थित रहकरभी कुछ कर्म नहीं करता और करे हुए कर्मों करके लिप्तभी नहीं होता ॥ ३१ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ३२

जिस प्रकार कि–सर्वव्यापक आकाश अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण (जिन २ वस्तुओं में व्याप्त है उन २ वस्तुओंसे) लिप्त नहीं होता, इसीप्रकार वह आत्मा संपूर्ण देहोंमें स्थित रहकरभी (किसी दोषसे) लिप्त नहीं होता ॥ ३२ ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ३३

जैसे एकही सूर्य इस संपूर्ण संसारको प्रकाशित करताहै, ऐसेही हे अर्जुन ! एकही आत्मा संपूर्ण देहोंको प्रकाशित करता है ॥ ३३ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ३४

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जो ब्रह्मज्ञानी पुरुष ज्ञानदृष्टिसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके अन्तरको प्राणियोंकी प्रकृति (अर्थात्-अविद्यारूप मायासे) मुक्त होने के उपायको जानतेहैं, वे परमपद मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

इतिश्रीभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

❀चतुर्दशोऽध्यायः❀



श्रीभगवानुवाच ।

रं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः॥

श्रीभगवान् बोले कि-

हे अर्जुन! अब मैं फिरभी संपूर्ण ज्ञानों में उत्तम जो ज्ञानहै तिसका वर्णन तुमसे करता हूं, जिस ज्ञान को जानकर सब ऋषि[मोक्ष]को प्राप्त हुए हैं

दं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
र्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥

इस श्रेष्ठ ज्ञानकी उपासना करके मेरे साधर्म्य अर्थात्-सारूप्यताको प्राप्त हुए सिद्ध पुरुष सृष्टि की आदिमें उत्पन्न और प्रलयके समय विनाश को प्राप्त नहीं होते हैं॥ २॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।

सम्भवः सर्वभूतानां ततोभवति भारत

हे भारत! मेरी प्रकृति समस्त संसारकी उत्प
का स्थान है, मैं उसीके विषै संकल्परूप गर्भ
धारण करता हूं उसी गर्भाधानसे समस्त प्राणि
की उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्त्तयः सम्भवन्तिया
तासां ब्रह्ममहद्योनिरहं वीजप्रदः पिता॥

हे कुन्तीके पुत्र ! सम्पूर्ण योनियों में जो
शरीर उत्पन्न होते हैं, उनसबकी प्रकृति ही मात
और मैं उनका गर्भाधान करनेवाला पितारूप

सत्त्वं रजस्तमइति गुणाः प्रकृतिसंभवाः
निवध्नन्ति महावाहो देहे देहिनमव्यय

हे दीर्घवाहो ! सत्त्व, रज, तम, प्रकृ
उत्पन्न होने वाले यह तीनोंगुण विकाररां
और इस देहमें विद्यमान हुए जीवात्मा
बन्धन में डालदेते हैं ॥ ५ ॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ॥ ६॥

हे निष्पाप ! इनतीनों गुणों में सत्त्वगुण निर्मल है, इस कारण प्रकाशमान् और विकार-रहित जीवात्मा को सुख और ज्ञानके संगसे बांधलेता है ॥ ६ ॥

रजोरागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्।
तं निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ७

हे अर्जुन ! तृष्णा (अप्राप्य वस्तुकी इच्छा) और आसक्ति (प्राप्त वस्तु में अनुराग) से उत्पन्न होने वाले रजोगुणको रागात्मक जानो, यह रजोगुण प्राणीको कर्मोंके संगसे बांधता है ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत८

हे भारत ! सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करने वाले तमोगुणको अज्ञानजनित जानो, वह तमो-

गुण प्रमाद (असावधानी) आलस्य और निद्राओंके द्वारा जीवात्माको बन्धनमें डालदेता है।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्माणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥९॥

हे अर्जुन ! सत्त्वगुण जीवात्माको सुखमें, रजोगुण कर्ममें और तमोगुण ज्ञानका आवरण करके प्राणीको प्रमाद में गिराता है ॥९॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥१०

हे भारत ! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण उदय होता है,रजोगुण और सत्त्वगुण को दवाकर तमोगुण, एवं तमोगुण और सत्त्वगुणको दवाकर रजोगुण उदय होता है ॥१०।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाशउपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥११

जब इस संसार में समस्त इन्द्रियोंके द्वारोंमें ज्ञानरूप प्रकाश उत्पन्न होजाता है, उस समय सत्त्वगुणकी विशेष वृद्धि जानो ॥ ११ ॥

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ ! जब रजोगुणकी शरीर में वृद्धि होती है, तब लोभकर्म करने में प्रवृत्ति, कर्मोंका आरम्भ, अशान्ति और स्पृहा, विषयोंकी वासना यह सब उत्पन्न होते हैं ॥१०॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादोमोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१३

हे कुरुनन्दन ! तमोगुणकी वृद्धि होनेपर विवेकका नाश, कर्म करने में अप्रवृत्ति(निरुद्यमता) प्रमाद (उन्मत्तता) और मोह यह सब उत्पन्न होते हैं ॥१३॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते॥१४

जब सत्त्वगुणकी वृद्धि हो और उस समय प्राणी मृत्युको प्राप्त होजाय तौ उत्तम जनों के निर्मल लोकोंको प्राप्त होता है ॥१४॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते १५

यदि रजोगुणकी वृद्धि होनेपर मृत्युको प्राप्त होजाय तौ कर्म करने वाले जनोंमें जन्म होता है और तमोगुणकी वृद्धि होनेके समय प्राण छूटें तौ वह मृतक पुरुष पशुआदि कों की मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥

जिसमें सत्त्वगुण प्रधान हो तिस कर्मका निर्मल सुख, रजोगुण प्रधान कर्म का फल दुःख और तमोगुण प्रधान कर्मका फल अज्ञान कहाजाता है १६

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसोलोभएव च।
प्रमादमोहौ तमसोभवतोऽज्ञानमेव च १७

सत्त्वगुणसे ज्ञान, रजोगुण से लोभ, एवं तमोगुण से प्रमाद, मोह तथा अज्ञान उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वं गच्छन्तिसत्त्वस्थामध्येतिष्ठन्तिराजसाः
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः।

सतोगुणी पुरुष ऊर्ध्वलोकों (अर्थात्—मोक्ष) को प्राप्त होते हैं, रजोगुण वाले पुरुष मध्यलोक और अधमगुण की वृत्ति (निद्रा आलस्यादिक) में स्थित हुए तमोगुणी पुरुष अधोगतिको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥

जो देखनेवाला पुरुष कर्त्ता को सत्त्व, रज, तम, इन तीनों गुणों से अलग नहीं देखता, और आत्मा को उन गुणों से भिन्न अर्थात् निर्गुण साक्षी मात्र जानता है, वही मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है ॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

शरीरधारी पुरुष देह से उत्पन्न हुये सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों को जीतकर जन्म मृत्यु और वृद्धावस्था तथा दुःख इनसे मुक्त होके अमृतरूप मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

अर्जुनउवाच ।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्त्तते ॥

अर्जुनने पूछा कि-

हे प्रभो ! वे कौनसे चिह्न हैं कि-जिन करके यह पुरुष सत्त्वादि उक्त तीनोंको उल्लंघन करनेवाला समझा जाता है ? और उसका क्या आचार है, तथा शरीरधारी पुरुष इन तीनों गुणोंको किस प्रकार उल्लंघन करसक्ता है ? ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते२३॥
समदुःखसुखःस्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चन
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतःस उच्यते२५

श्रीभगवान् बोले कि—

हे पाण्डुनन्दन ! सत्त्वगुणका प्रकाश, रजोगुण की प्रवृत्ति और तमोगुणका मोह येही एक२ गुणके भिन्न२परिणाम हैं जिनके प्रवृत्त होनेपर जो किसीसे द्वेष नहीं करता और उनके निवृत्त होजानेपर उनकी कामना नहीं करता । तथा जो पुरुष उदासीनकी समान स्थिर रहकर सत्त्वादिगुणों करके चलायमान नहीं होता, सत्त्वादिगुण अपने कार्यों में प्रवृत्त रहते हैं ऐसा जानकर जो सावधानीसे बैठारहकर किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं करता । जो पुरुष सुख और दुःखको समान मानता है, स्वस्थ (अर्थात् किसी प्रकारके दुःखको न प्राप्त होनेवाला) जो मिट्टी पत्थर और सुवर्णको समान जानता है, प्रिय और अप्रिय (भले, बुरे) को समान माननेवाला, धैर्यवान् , अपनी निन्दा और स्तुति इन दोनोंके विषें चित्तकी वृत्तिको समान रखनेवाला । मान

और अपमानमें समान, मित्र और शत्रुओंके पक्ष में समान दृष्टि रखनेवाला, सांसारिक समस्त कर्मोंके आरम्भको त्यागनेवाला, अर्थात् कर्मोंके फलकी कामना न करनेवाला, ऐसा जो पुरुष है उसीको गुणातीत कहते हैं ॥२२॥ २३ ॥ २४॥२५॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
सगुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयायकल्पते२६

जो पुरुष अनन्यभक्तिसे मेरी उपासना करता है, वह इन तीनों गुणोंका उल्लंघन करके ब्रह्मभाव को प्राप्त होनेके योग्य होता है ॥२६॥

ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगोनाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

क्योंकि—ब्रह्म, विकाररहित, अमृत अर्थात्—

मोक्ष और सनातनधर्म एवं अखण्ड सुख इन सब को ठीक २ प्रतिष्ठा अर्थात्—आश्रय मैं ही हूं २७

इतिश्रीभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

❋ पञ्चदशोऽध्यायः ❋



श्रीभगवानुवाच।

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद सवेदवित्[१]

श्रीभगवान् बोले कि—

इस संसाररूप अश्वत्थ (पीपलके वृक्ष) के ऊपर [पुरुषोत्तम] मूल, नीचे [हिरण्य गर्भ] शाखा, और कर्मकाण्डरूप वेद इसके पत्ते हैं, इस

१—अश्वत्थ अर्थात्—'अ' (नहीं) 'श्वः' प्रभातकाल 'स्था' स्थित रहने वाला, तात्पर्यार्थ यह है कि—जो नाशवान् होनेके कारण प्रातःकाल पर्यन्त भी स्थित न रहसके उस [अनित्य को] 'अश्वत्थ' कहते हैं।

प्रकार संसाररूप वृक्षको जो जानता है, वही वेदका जाननेवाला है ॥ १ ॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा-
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि,
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

उस संसाररूप वृक्षकी अधः अर्थात् नीचयोनि और ऊर्ध्व अर्थात् उत्तम योनियोंमें उत्पन्न होने वाले शाखा हैं सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों करके वृद्धिको प्राप्त हुए शब्दादिक विषय उसके पत्ते हैं, और उसकी वासनारूप जड़ें नीचे तथा ऊपर फैली हुई हैं; वह वासनाही संसारमें पुण्य और पापको उत्पन्न करती है ॥ २ ॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते,
नान्तोन चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।

अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं,
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः ॥
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये,
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

इस संसाररूप वृक्षका रूप, अन्त, आदि और स्थिति कुछभी विदित नहीं होती, इस दृढ मूलवाले वृक्षको तीव्र वैराग्यरूप शस्त्र से छेदन करके इसके आदिकारण उस परमपद (ब्रह्म) का अन्वेषण करना चाहिये,जिस स्थान में पहुँच कर फिर लौटके नहीं आते, जिन परमेश्वर से इस सम्पूर्ण संसारका विस्तार होरहा है,उन ही आदि पुरुषकी मैं शरणागत हूं ॥ ३ ; ४ ॥

निर्मानमोहाजितसङ्गदोषा-
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।

द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

जो पुरुष मान और मोहरहित हैं जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है, वेदान्तविद्या के विचारमें निरत, और संपूर्ण कामनाओं से निवृत्त हुए, सुख और दुःख नामक द्वन्द्व पदार्थों से मुक्त हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा ननिवर्तन्ते तद्धाम परमंमम ॥ ६ ॥

जिस परमपद को प्राप्त होकर योगी जन फिर नहीं लौटते वही मेरा परम उत्कृष्ट धाम है, उस धाम को (स्वयं प्रकाशमान् होनेके कारण) सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि प्रकाशित नहीं करसक्ते हैं ॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणिप्रकृतिस्थानि कर्षति।

इस संसारमें सनातन जीव मेरा ही अंश है, वह प्रकृति में स्थित हुए पांच इन्द्रियों और छठे मनको आकर्षण करता है ॥ ७ ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

जिस प्रकार पवन पुष्पासे सुगन्धिको ग्रहण करके दूसरे स्थान में प्राप्त करता है, ऐसेही यह जीवात्मा जिन२ शरीरोंको त्यागकर जिन २ शरीरोंमें प्राप्त होता है, तौ उन इन्द्रियों और मनको भी साथही लेजाता है ॥ ८ ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९॥

यह जीवात्मा श्रोत्र, नेत्र, त्वचा, जिह्वा, नासिका और मनका आश्रय करके शब्दादिक विषयों को भोगता है ॥ ९ ॥

उत्क्रामन्तंस्थितंवापिभुञ्जानंवागुणान्वितम्

विमूढानानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः१०

एक देहसे दूसरे देहमें जानेवाले, अथवा एकही देहमें स्थित हुए, अथवा सत्त्वादि गुणयुक्त होकर विषयोंको भोगते हुए इस जीवात्माको अज्ञानी पुरुष नहीं देखते, किन्तु ज्ञानरूप नेत्रवाले अर्थात् ज्ञानी पुरुष देखते हैं ॥१०॥

यतन्तोयोगिनश्चैनंपश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्
यतन्तोऽप्यकृतात्मानोनैनं पश्यन्त्यचेतसः॥

योगनिष्ठ ज्ञानी पुरुष ध्यान आदिके द्वारा अपने शरीरमें स्थितहुए इस जीवात्माको देखते हैं,परन्तु जिनके चित्तमें ज्ञानका संस्कार नहीं है ऐसे अज्ञानी पुरुष यत्न करनेपर भी उसको नहीं देखसक्के ॥ ११ ॥

यदादित्यगतंतेजोजगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजोविद्धिमामकम्

जो तेज सूर्य–चन्द्रमा और अग्निमें व्याप्त

हुआ संपूर्ण संसारको प्रकाशमान कर रहा है, उस
सबको तुम मेरा ही तेज जानो ॥ १२
गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीःसर्वाःसोमोभूत्वारसात्मकः
मैं भूमीमें प्रवेश करके अपने अतुलवीर्यसे समस्त
प्राणियोंको धारण करता हूं, और रसात्मक
चन्द्रमा होकर संपूर्ण ओषधियोंको पोषण करताहूं॥
अहं वैश्वानरोभूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तःपचाम्यन्नं चतुर्विधम् १४
मैंही जठराग्नि होकर प्राणियों के देहमें स्थित
रहता हूं और प्राण तथा अपान वायुसे युक्त होकर
चारप्रकारके अन्नको पचाता हूं ॥ १४ ॥

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो-
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।

1—भक्ष्य (चाबनेके योग्य अन्न), भोज्य (भोजन करने के योग्य अर्थात् सामान्य अन्न), लेह्य (चाटने के योग्य) और चोष्य (चूसने के योग्य)।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो-
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयकमलमें स्थित रहता हूं, मुझहीसे स्मृति, ज्ञान और तर्क उत्पन्न होते हैं, सब वेदोंकेद्वारा जाननेके योग्य मैं ही हूं, वेदान्तका निर्माण करनेवाला और वेदोंका जाननेवाला भी मैं ही हूं ॥ १५ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरःसर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्यते १६

इस संसारमें क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) यह दो पुरुष हैं, तिनमें सम्पूर्ण प्राणीमात्र क्षर और कूटस्थ (अर्थात् परब्रह्म) अक्षर कहाताहै॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
योलोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्ययईश्वरः १७।

इसके अतिरिक्त उत्तम एक सूक्ष्म पुरुष है, जिस को परमात्मा कहा जाता है वही अविनाशी पर-

मेश्वर त्रिलोकीको व्याप्त करके पालन पोषण करता है ॥ १७ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

जिस कारण से कि मैं क्षर (नाशवान्) से परे और अक्षरसे भी उत्तम हूं, इसीकारण मैं लोक और वेदमें पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूं ॥ १८ ॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत १९

हे भारत ! जो मोहरहित पुरुष इसप्रकार मुझको पुरुषोत्तम जानता है वही सर्वज्ञ है, अतएव सम भावोंसे वह मेराही भजन करता है ॥ १९ ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगोनाम-पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

हे निष्पाप ! मैंने अत्यन्त गोपनीय शास्त्र तुम से वर्णन करा है, इस शास्त्रको जानकर पुरुष बुद्धिमान् (ज्ञानी) और कृतकृत्य होजाताहै २०

इति श्रीभाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

❀ षोडशोऽध्यायः ❀



श्रीभगवानुवाच ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् १
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागःशान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् २
तेजः क्षमा धृतिःशौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

१—कोई २ 'न तिमानिता' का यह भी अर्थ करते हैं कि संसार में अपना अधिक मान न चाहना ।

श्रीभगवान् बोले कि–

हे अर्जुन! अभय, चित्तकी शुद्धि, ज्ञानयोग में स्थिति, दान करना, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, वेदाध्ययन, तप और ऋजुता। अहिंसा, सत्य बोलना, क्रोधका नाश, त्याग अर्थात्–उदारता, शान्ति, पिशुनता (चुगली) न करना, सब प्राणियों के ऊपर दयाकरना, विषयों में लोलुप न होना, कोमलता, लज्जा और चपलताका त्याग। तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, किसी से द्रोह न करना, अत्यन्त मान न करना यह सब गुण दैवी (सत्त्वगुणमयी) प्रकृतिका आश्रय लेकर जन्म धारण करनेवाले पुरुषोंको प्राप्त होते हैं ॥१॥२॥३॥

दम्भोदर्पोभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्

हे पार्थ! दम्भ, गर्व, मान, क्रोध, कठोरता और

१–धार्मिकता दिखाने के लिये धर्माचरण करना इसको दम्भ कहते हैं। २ महात्माओं को उद्विग्न करने वाली वृत्ति को पारुष्य कहते हैं।

अज्ञान, यह सब (अवगुण) आसुरी सम्पत्ति भोगनेवालों को होते हैं ॥ ४ ॥

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
माशुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसिपाण्डव॥

हे पाण्डुनन्दन ! दैवी सम्पत्ति मोक्ष करती है, और आसुरी सम्पत्ति बन्धन में डालती है, हे अर्जुन! तुम शोक मतकरो, क्योंकि–दैवी सम्पत्ति भोगनेके लिये उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो ॥ ५ ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैवआसुर एवच।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु६

हे अर्जुन ! इस संसार में प्राणियों की दैवी और आसुरी दो प्रकारकी सृष्टि है, तिनमेंसे दैवी सृष्टिका तो मैंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया, अब हे पार्थ ! आसुरी सृष्टिका वर्णन मुझ से सुनो॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारोन सत्यं तेषु विद्यते॥

आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति अर्थात्—अभ्युदयसाधक तथा मोक्षसाधक वैदिक कर्मों को नहीं जानते, इसीकारण उनमें शौच, सदाचार और सत्य यह कुछभी नहीं होता ॥ ७ ॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥८॥

वह आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य संसारको असत्य[1], अप्रतिष्ठ[2] और अनीश्वर[3] कहते हैं, उनका यह सिद्धान्त है कि—परस्पर काम से प्रेरणा करतेहुए

१—न विद्यते (वेदरूपं (सत्य प्रमाणं) यस्मिंन्तदसत्यम्, अर्थात् जिसमें वेदरूप सत्यका प्रमाण नहीं। तात्पर्य यह है कि—आसुरी प्रकृतिवाले पुरुष संसारके विषयमें वेदका प्रमाण नहीं मानते और जिसमें वेदका प्रमाण न माना जाय उसको 'असत्य' कहते हैं। २—जिसमें धर्माधर्मकी व्यवस्था न हो उसे 'अप्रतिष्ठित' कहा जाताहै। ३—जिसका कोई कर्त्ता न हो वह अनीश्वर कहाता है ॥

स्त्रीपुरुषों के संयोग से यह संसार उत्पन्न होता है और कोई कारण नहीं है ॥ ८ ॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयायजगतोऽहिताः ९

ऐसी दृष्टि रखनेवाले, मलिन चित्त और अल्पबुद्धि तथा उग्रकर्म करनेवाले वह पुरुष संसारका नाश करने के लिये अहितकर्मों में प्रवृत्त हुए उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्त्तन्तेऽशुचिव्रताः

वह पुरुष दुःखसे पूर्ण होनेके योग्य अभिलाषाओंको अंगीकार कर दम्भ, मान और मदसे युक्त हुए अपवित्र व्रतोंको धारण कर दुराग्रही होके सर्वत्र (अशुभ कर्म करनेमें) प्रवृत्त रहते हैं १०॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ११

वह मरणपर्यन्त अतुल चिन्तासे व्यस्त रहते हैं,और उनका येही निश्चय रहता है कि-कामनाओं का भोगनाही परम पुरुषार्थहै, अन्य कुछ नहीं ॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥

सैकड़ों आशारूप बन्धनों से बँधेहुए, काम और क्रोध में तत्पर वह पुरुष कामोपभोग के लिये अन्यायसे धन उपार्जन करने की इच्छा करते हैं॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥१३॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहंभोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्तिसदृ
शो मया।यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञान
विमोहिताः ॥ १५ ॥

आज मैंने यह (धनादिक) पाया, मेरा य

मनोरथ शीघ्र पूर्ण होगा, यह वस्तु मेरे पास है और यह भी धन फिर मुझको ही मिलेगा। यह शत्रु मुझसे मारागया, अन्यान्य शत्रुओं को भी मारूंगा, मैं ईश्वर अर्थात्-सब कुछ करने में समर्थ और भोगी (सब का भोगनेवाला) हूं तथा मैं सिद्ध (कृतकृत्य) बलवान् और सुखी हूं। मैं धनाढ्य और कुलीन हूं, मेरा समान भला और कौन है ? अर्थात्-कोई नहीं, मैं यज्ञ करूंगा,दान दूंगा और आनन्दको प्राप्त होऊंगा, वे पुरुष इस प्रकार अज्ञान से मोहित रहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताःकामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ१६

अनेकों विकारों करके चित्त में भ्रमको प्राप्त हुए और मोह (अज्ञान) रूप जालसे बँधे एवं विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त हुए वह पुरुष अपवित्र नरकमें गिरते हैं ॥ १६ ॥

आत्मसंभाविताःस्तब्धा धनमानमदान्विताः
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् १७

अपने आप अपनी स्तुति करनेवाले स्तब्ध अर्थात्-पूज्योंकी पूजाका व्यतिक्रम करने वाले, धनवान् और अहंकार से युक्त, वह पुरुष यथोक्त विधिको त्यागकर पाखण्ड करके यज्ञ करते हैं १७

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः १८

अहंकार, बल, दर्प, काम और क्रोध इन के आधीन रहनेवाले वे पुरुष अपने तथा दूसरों के देहों में मुझ स्थित हुए के साथ द्वेष करते और निन्दाकरने में प्रवृत्त रहते हैं॥ १८॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु१९

हे अर्जुन! द्वेष करनेवाले, क्रूर, नित्य अशुभ कर्म करनेवाले ऐसे उन नीच पुरुषों को मैं संसार के बीच वारंवार आसुरी योनियोंमें ही गिराता हूँ।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढाजन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततोयान्त्यधमां गतिम्

हे कुन्तीनन्दन ! वह अज्ञानी पुरुष प्रति जन्म में आसुरी योनियों ही में उत्पन्न हुये अतएव मुझ को प्राप्त न होकर अधमगति को प्राप्त होते हैं ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्रयंत्यजेत्

काम, क्रोध तथा लोभ, यह तीनों आत्म-स्वरूप के नाश करनेवाले नरकके द्वार हैं, इस कारण इन तीनों का परित्याग करदेना चाहिये ॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततोयाति परांगतिम्

हे कुन्तीनन्दन ! इन तीनों नरकके द्वारों करके मुक्त हुआ पुरुष अपने कल्याण के लिये (भक्ति-योग का) आचरण करता है, तिस (भक्तियोग) के द्वारा परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ २२॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।

न ससिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् २३

जो पुरुष शास्त्रोक्त विधिको छोड़कर अपनी इच्छा के अनुसार कर्मों का आचरण करता है, वह (स्वर्गादि प्राप्तिरूप) सिद्धि, सुख और परमगति (मोक्ष) को प्राप्त नहीं होता ॥ २३ ॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिपत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे देवासुरसम्पद्विभाग योगो-नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! इस कारण कार्य और अकार्यके व्यवस्था में शास्त्र को प्रमाण मानकर और शास्त्रोक्त विधिको जानकर तुम कर्म करने के योग्य हो ॥ २४ ॥

इतिश्रीभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

❋ सप्तदशोऽध्यायः ❋

अर्जुनउवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहोरजस्तमः

अर्जुन ने कहा कि—

हे श्रीकृष्ण भगवन्! जो पुरुष शास्त्रोक्त विधि को त्यागकर और श्रद्धापूर्वक यज्ञादिकका आचरण करते हैं उनकी श्रद्धा सात्त्विक, राजस, वा तामस इनमें से किस प्रकारकी है ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु

श्रीभगवान् बोले कि—

हे अर्जुन! समस्त प्राणियोंकी स्वाभाविक ही एक सतोगुणी, दूसरी रजोगुणी और तीसरी

तमोगुणी यह तीन प्रकारकी श्रद्धा होती है उसको
तुम सुनो ॥ २ ॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषोयोयच्छ्रद्धः सएव सः॥३

हे भारत ! समस्त प्राणियोंकी अपने अन्तः-करणके अनुसार ही श्रद्धा होती है, क्योंकि यह पुरुष श्रद्धामय अर्थात् श्रद्धारूप परिणाम वाला है, क्योंकि जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही होता है ॥ ३ ॥

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसिराजसाः
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः

सात्त्विक प्रकृतिवाले (सतोगुणी) पुरुष देवताओं की, रजोगुणी पुरुष यक्ष और राक्षसों की तथा अन्य अर्थात् तमोगुणी पुरुष भूत प्रेतादिकों की पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपोजनाः ।

दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ५
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्

दम्भ और अहंकारकरके युक्त, काम और अनुरागसे समन्वित तथा शरीरमें स्थितहुए पञ्च महाभूत और देह में व्याप्तहुए मुझको भी क्लेश देते हुए वह अज्ञानी पुरुष शास्त्रविरुद्ध घोर कर्म करते हैं, उनको तुम असुरों की समान बुद्धिवाला जानो ॥ ५ ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधोभवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥७॥

सम्पूर्ण प्राणियों के आहार, यज्ञ, तप और दान यह सब तीन २ प्रकार के होते हैं, अब तुम उनके भेदको सुनो ॥ ७ ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिराहृद्या आहाराः सा-

स्त्रिग्धाः प्रियाः ॥ ८ ॥

आयु, उत्साह, बल, आरोग्यता, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, स्निग्ध (चिकने) स्थिर अर्थात्—चिरकाल पर्यन्त शरीरमें बल बढ़ाने वाले, एवं हृदयको प्रिय लगनेवाले (अर्थात्—स्वादिष्ट) ऐसे आहार सतोगुणी पुरुषों को प्रिय होते हैं॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ९

कटु (तीखे), अम्ल (खट्टे), लवण(खारी), अत्यन्त उष्ण, तीक्ष्ण, रूखे और उदरमें दाह करने वाले तथा दुःख शोक और रोगोंको उत्पन्न करने वाले आहार रजोगुणी पुरुषों को प्रिय लगते हैं ॥ ९ ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

यातयाम अर्थात् पहरभरका धराहुआ, नीरस,

दुर्गन्धियुक्त, पर्युषित (वासी), उच्छिष्ट (जूंठा), और अपवित्र ऐसा भोजन तमोगुणी पुरुषों को प्रिय लगता है ॥ १० ॥

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञोविधिदृष्टो यइज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय ससात्त्विकः ११

अवश्य कर्त्तव्य जानकर और उसके फल की कामना न करके एकाग्रचित्तसे जो यज्ञ किया जाता है वह सात्त्विकयज्ञ है ॥ ११ ॥

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् १२

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ ! फलप्राप्तिकी कामना से दम्भ अर्थात्—अपनी प्रसिद्धि के अर्थ जो यज्ञ किया जाता है उस यज्ञको राजस यज्ञ जानो १२

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते १३॥

शास्त्रोक्त विधिसे रहित, अन्नदानसे शून्य, मन्त्र

और दक्षिणारहित, तथा श्रद्धारहित जो यज्ञ किया जाता है उस यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तपउच्यते॥१४॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु और बुद्धिमान (विद्वान वा तत्त्वज्ञानी) इनका पूजन, पवित्रता, ऋजुता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, इनको शारीरक तप कहते हैं॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियंहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तपउच्यते१५

किसीके चित्तको उद्वेग न पहुंचानेवाला, सत्य, प्रिय और हितकारी, ऐसा वचन बोलना, स्वाध्याय अर्थात्—वेदाभ्यास करना, यह वाचिक तप कहा जाता है ॥ १५ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते॥१६

मनकी प्रसन्नता, सौम्यता, मौन रहना, म

को स्वाधीन रखना और अन्तःकरण की शुद्धि यह सब मानसिक तप कहलाता है ॥ १६ ॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते

फलकी इच्छा न करनेवाले एकाग्रचित्तयुक्त पुरुषोंकरके परम श्रद्धापूर्वक तीन प्रकारका किया हुआ तप सात्त्विक तप कहलाता है॥१७॥

सत्कारमानपूजार्थं तपोदम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् १८

अपने सत्कार, मान और पूजनके लिये दम्भ करके जो तप कियाजाता है वह चंचल और अस्थिर राजस तप कहा जाता है ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् १९

जो दुराग्रह से आत्माको पीडा देकर अथवा दूसरों का विनाश करनेके लिये तप कियाजाता

१७--कायिक, वाचिक और मानसिक ।

है उसको तामस तप कहते हैं ॥ १९ ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकंस्मृतम्॥

दान अवश्य करना चाहिये ऐसा विचारके देश (काशी, प्रयाग आदि पवित्र स्थान) में, (संक्रान्ति आदि) पुण्यकाल और सुपात्र पुरुष को उपकारकी कामना न करके जो दान दिया जाता है उसको सात्त्विक दान कहते हैं ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥

जो दान प्रत्युपकारकी इच्छासे अथवा किसी प्रकार के फलकी कामनासे क्लेश करके दिया जाता है उसको राजस दान कहते हैं ॥ २१ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

और जो दान अयोग्यदेश, अयोग्य समय में

कुपात्र को असत्कार और अनादरपूर्वक दिया जाता है उसको तामस दान कहते हैं ॥ २२ ॥

ओंतत्सदिति निर्देशोब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

ओम् तत् और सत् यह तीन प्रकारके ब्रह्मके नाम कहे हैं, और इन्हीं के द्वारा प्रथम ब्रह्माजीने ब्राह्मण, वेद और यज्ञोंको निर्माण किया था ॥ २३ ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥

इसकारण ओंकार का उच्चारण करके ब्रह्मवादी पुरुष शास्त्रोक्त यज्ञ, दान और तपरूप क्रिया करने में प्रवृत्त रहते हैं ॥ २४ ॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाःक्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः

मोक्षकी इच्छा करनेवाले मनुष्य सब प्रकार के फलकी कामनाको त्यागकर तत् शब्दका

उच्चारण करके यज्ञ, तप और दानरूप विविध प्रकारकी क्रियायें करते हैं ॥ २५ ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते २६

हे अर्जुन ! सद्भाव अर्थात् "है" इस अर्थमें और साधुभाव अर्थात् उत्तमता तथा शुभकर्म में सत् शब्दका प्रयोग कियाजाता है ॥ २६ ॥

यज्ञे तपसि दानेच स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥२७॥

यज्ञ, तप और दान इनमें स्थिति को सत् अर्थात् सत् स्थिति कहते हैं, और परमेश्वर के अर्थ किये हुएको भी सत् (सत्कर्म) कहते हैं २७

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह २८

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नामसप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

हे पार्थ! श्रद्धारहित जो यज्ञ, दान और तप तथा और भी जो कर्म कियाजाता है उसको असत् कहते हैं, तथा वह असत् कर्म इस लोक और परलोकमें कुछ फल नहीं देता ॥ १८ ॥

इतिश्री.भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

❋अष्टादशोऽध्यायः❋

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् । त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

अर्जुनने पूछा-

हे महाबाहो! हे हृषीकेश!! हे केशिनिकन्दन!! अब संन्यास और दान इन दोनोंका भिन्न२ भेद, सुनने की मेरी इच्छा है ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो-
विदुः । सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं
विचक्षणाः ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले कि-

सम्पूर्ण काम्य कर्मोंके त्यागको तत्त्वज्ञानी पुरुष सन्न्यास कहते हैं, और सम्पूर्ण कर्मोंके फलके परित्यागको चतुर पुरुष त्याग कहते हैं ॥ २ ॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

कोई २ बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं कि-कर्म सदोष हैं अतएव उनको त्याग देना चाहिये, तथा अन्य विद्वान् पुरुष कहते हैं कि-यज्ञ, दान और तप, सम्बन्धी कर्मको नहीं त्यागना चाहिये ॥ ३ ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।

त्यागोहि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः॥
परन्तु हे अर्जुन ! त्यागके विषयमें जो मेरा निश्चय है, उसे तुम सुनो । हे नरशार्दूल ! त्याग तीन प्रकारका कहा गया है ॥ ४ ॥

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ५

यज्ञ, दान और तपसम्बन्धी जो कर्म हैं उनको त्यागना न चाहिये, वह कर्म अवश्यही कर्तव्य हैं क्योंकि—यज्ञ, दान और तप यह कर्म विवेकी पुरुषोंके मनको पवित्र करते हैं ॥ ५ ॥

एतान्यपि तु कर्माणि संगंत्यक्त्वा फलानिच
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ६

परन्तु हे पार्थ ! यह सब कर्मभी फल और आसक्तिको त्यागकर करने चाहिये, ऐसा मेरा सर्वोत्तम निश्चय है ॥ ६ ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणोनोपपद्यते ।

मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्त्तितः॥

क्योंकि—हे अर्जुन! नित्यकर्मोंका संन्यास नहीं करना चाहिये और यदि मोहसे नित्यकर्मोंका त्याग करदिया जाय तो उसको तामस त्याग कहते हैं ॥ ७ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
सकृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्८

कर्मानुष्ठान को कष्टसाध्य समझकर शरीर को क्लेश होनेके भयसे जो नित्यकर्मोंका त्याग किया जाता है उसको राजस त्याग कहते हैं, और राजस त्यागसे त्यागका फल नहीं मिलता॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
संगंत्यक्त्वा फलंचैव सत्यागःसात्त्विकोमतः

नियमित कर्म अवश्य कर्त्तव्य है, ऐसा निश्चय करके उन कर्मोंके फल और उनमें आसक्तिको त्यागके जो कर्म कियेजाते हैं, उनको सात्त्विक त्याग कहते हैं ॥ ९ ॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशलेनानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टोमेधावी छिन्नसंशयः॥

सात्त्विक त्यागवाला, सतोगुणी तथा बुद्धिमान् (तत्त्वज्ञानी) और जिसके सम्पूर्ण सन्देह दूर होगये हैं ऐसा पुरुष कष्टसाध्य कर्मों में द्वेष और सुसाध्य कर्मोंमें अनुराग नहीं करता ॥ १० ॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुंकर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी सत्यागीत्यभिधीयते ११

शरीरधारी (पुरुष) सम्पूर्ण कर्मों के त्यागने को असमर्थ है, इस कारण जिसने कर्मोंके फल को त्याग दिया है वही त्यागी कहाजाता है ॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रंच त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्

अनिष्ट (नरकादिकी प्राप्तिरूप) इष्ट (स्वर्गादिककी प्राप्तिरूप) और मिश्र (अर्थात्-सुख दुःख समन्वित मनुष्यादि देहप्राप्तिरूप) यह

तीन प्रकारके कर्मोंके फल हैं, त्याग न करनेवाले पुरुषों को यह फल शरीर त्याग करने के अनन्तर प्राप्त होते हैं, और संन्यासियोंको प्राप्त नहीं होते अर्थात्–संन्यासियों की मोक्ष होजाती है ॥१२॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्यंकृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्

हे महाबाहो ! समस्तकर्मोंकी सिद्धिके लिये तत्त्वज्ञान को उत्पन्न कराने वाले सांख्यशास्त्रमें यह पांच कारण वर्णन किये हैं उनको तुम मुझसे सुनो ॥ १३ ॥

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणंच पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टादैवं चैवात्र पञ्चमम् १४

अधिष्ठान (सुख दुःखादिका आश्रय शरीर) कर्त्ता (अहंकार), अनेक प्रकारके करण अर्थात् श्रोत्रादिक, विविधभांतिकी चेष्टा (प्राण, अपान आदिकों के व्यापार) ग्रार यह और पांचवाँ

दैव अर्थात्—सबका प्रेरक, कर्मोंके यह पांच कारण हैं ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्यहेतवः॥१५

यह मनुष्य शरीर वाणी अथवा मन इनके द्वारा उत्तम वा अधम जो कुछभी कर्म करता है, उस सबके यह उपरोक्त पांच कारण हैं ॥ १५ ॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥

ऐसा होनेपर भी संस्काररहित जो अज्ञानी पुरुष(सब से भिन्न रहनेवाले भी) आत्माको कर्त्तारूप से देखता है, वह मन्दमति पुरुष कुछ भी नहीं देखता अर्थात् अज्ञानी है ॥ १६ ॥

यस्य नाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्नहन्ति न निबध्यते॥

जिस पुरुषको (मैं यह करता हूं ऐसा) अहं-

कार नहीं है, और जिसकी बुद्धि कर्मों में आसक्त नहीं है, वह इन लोकोंको मारकर भी उन्हें नहीं मारता और किसी प्रकारके कर्मोंसे लिप्त नहींहोता॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्त्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः॥

ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता यह तीन प्रकारके कर्मके प्रवर्त्तक हैं। तथा कारण, कर्म और कर्त्ता यह तीन कर्मके आश्रय हैं॥ १८॥

ज्ञानं कर्म च कर्त्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि॥

हे अर्जुन! सांख्यशास्त्रमें ज्ञान, कर्म और कर्त्ता इनको सत्त्व, रज और तम इन तीन प्रकार के गुणोंके भेद से तीन प्रकारका कहा है, उनको मैं कहता हूं तुम सुनो॥ १९॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते। अवि-

भक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥

जिस ज्ञान करके समस्त प्राणियों में भेदरहित निर्विकार और एकही आत्मस्वरूप को पुरुष देखता है, उस ज्ञानको सात्त्विक ज्ञान कहते हैं॥२०॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धिराजसम् २१

और जिस ज्ञान करके पुरुष भिन्न २ समस्त प्राणियों में अनेक प्रकार के असंख्य भावोंको देखताहै, हे अर्जुन! उस ज्ञानको राजस ज्ञान जानो ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् २२

तथा जिस ज्ञानकरके एकही किसी देहादिक में ईश्वर वा आत्मा इतना ही है इस प्रकारके आग्रहयुक्त, प्रमाणरहित, असत्य और तुच्छ ज्ञानको तामस ज्ञान कहते हैं ॥ २२ ॥

नियतंसंगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते २३

आसक्ति और राग द्वेष छोड़कर फलप्राप्तिकी कामना न करके जो नित्य कर्म कियाजाता है उस कर्मको सात्त्विक कर्म कहते हैं ॥ २३ ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥

किसी कामना से, अथवा अहंकारसे अत्यन्त क्लेशपूर्वक जो कर्म कियाजाता है उसको राजस कर्म कहते हैं ॥ २४ ॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते २५।

परिणाम में होनेवाले धनके नाश, शुभ और अशुभ दूसरोंको पीडा, एवं अपने पुरुषार्थ इनको न समझकर अज्ञानसे जिस कर्म का प्रारम्भ किया

१— तत्तामसमुदाहृतमित्यपि पाठः ॥

जाता है, उसको तामस कर्म कहते हैं ॥ २५ ॥

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक-उच्यते । २६ ॥

आसक्तिरहित, अहंकारवर्जित, धैर्य और उत्साह से युक्त, कर्मफलकी सिद्धि और असिद्धि में निर्विकार अर्थात्—हर्ष—शोकरहित ऐसा जो कर्त्ता है उसको सात्त्विक कर्त्ता कहते हैं॥ २६ ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धोहिंसात्मकोऽशुचिः
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसःपरिकीर्त्तितः।

अनुराग करनेवाला, कर्मोंके फलकी कामना करने वाला, लोभी, हिंसक, अपवित्र, हर्ष और शोक करके युक्त जो कर्त्ता है उसको राजस कर्त्ता कहते हैं ॥ २७ ॥

अयुक्तःप्राकृतः स्तब्धःशठोनैष्कृतिकोऽलस
विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामसउच्यते ॥

असावधान, विवेकरहित, स्तब्ध अर्थात् पूज्यों की पूजाका व्यतिक्रम करने वाला, शठ अन्य पुरुषोंका निरादर करनेवाला, आलसी, विषाद-युक्त और दीर्घसूत्री(अर्थात् स्वल्पकार्यों को भी महीनों में करनेवाला) ऐसे कर्त्ताको तामस कहते हैं॥ २८ ॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय २९

हे धनञ्जय ! बुद्धि और धृति इनके भेदभी सत्त्व,रज और तम इन गुणों करके तीन प्रकारके होते हैं, अब उन सबको मैं सम्पूर्णता से वर्णन करताहूं तुम सुनो ॥ २९ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षञ्च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३०॥

हे पार्थ ! कार्य और अकार्य तथा भय और

अभय इनके विषै वृत्ति और निवृत्ति, तथा बन्ध और मोक्ष को जो भलीप्रकार समझती है, वह सात्त्विकी बुद्धि कही जाती है ॥ ३० ॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिःसा पार्थ राजसी॥

हे अर्जुन ! जिसके द्वारा धर्म और अधर्म तथा कार्य और अकार्य को यथार्थ न समझसके वह राजसी बुद्धि कहीजाती है ॥ ३१ ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी

और जो बुद्धि अज्ञानसे आच्छादित होकर धर्मको अधर्म अथवा अधर्मको धर्म जानती है, तथा सम्पूर्ण अर्थोंको विपरीत मानती है, हे अर्जुन ! उस बुद्धिको तामसी बुद्धि कहते हैं ३२

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।

योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३३ ॥

जिस अनन्य धृतिकरके योगके द्वारा मन, प्राण और इन्द्रियों के क्रियाओं को धारण किया जाता है, वह सात्त्विक की धृति कहाती है ॥ ३३ ॥

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन । प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सापार्थ राजसी॥

हे अर्जुन ! जिस धृति करके पुरुष धर्म, काम और अर्थोंको धारण करता है, और प्रसंगके अनुसार जिस करके फलकी कामना करता है, वह राजसी धृति कहलाती है ॥ ३४ ॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च । न विमुञ्चति दुर्मेधाधृतिः सा पार्थ तामसी

हे अर्जुन ! जिस धृतिके द्वारा दुर्बुद्धि पुरुष स्वप्न, भय, शोक, विषाद और मदको नहीं त्यागता उसको तामसी धृति कहते हैं ॥ ३५ ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! सुखभी (उक्त सत्त्वादि गुणों करके) तीन प्रकारका होता है, उसका वर्णन तुम मुझसे सुनो, जिसमें अत्यन्त अभ्यास होनेके कारण रमण करता है और जिसके प्राप्त होनेसे दुःखका नाश होजाता है॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्

जो प्रारम्भमें विष और अन्तमें अमृतकी समान हो। अपनी बुद्धिको निर्मल करनेवाले उस सुखको सात्त्विक सुख कहा है॥३७॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

और जो सुख शब्दादि अपने २ विषयों में

आसक्त हुई इन्द्रियोंके संयोगसे प्रथम तो अमृत की समान तथा अन्तमें विषकी समान हो उस को राजस सुख कहते हैं ॥३८॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥३९

जो प्रथम भी और अन्तमें भी आत्माका मोहित करनेवाला हो तथा निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ हो ऐसे सुख को तामस सुख कहागया है ॥ ३९ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्यात् त्रिभिर्गुणैः

हे अर्जुन! पृथ्वी, स्वर्ग वा देवताओंके बीच ऐसा कोई भी जीव नहीं है, जो प्रकृतिजनित सत्त्व, रज और तम इन गुणों करके मुक्त अर्थात्-भिन्न हो ॥ ४० ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥

हे परन्तप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के कर्म स्वभाव अर्थात्—प्रकृतिजनित गुणों करके भिन्न२ विभक्त होरहे हैं ॥ ४१ ॥

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

शम (चित्तकी शान्ति) दम(बाह्यइन्द्रियोंका दमन) तप, शौच (बाहर और भीतरकी शुद्धि) क्षमा (शान्ति अर्थात्–सहनशीलता), ऋजुता (सरलता) ज्ञान और विज्ञान अर्थात्–शास्त्रीय और लौकिक ज्ञान, तथा आस्तिकता (परलोक के विषय में श्रद्धा) यह ब्राह्मणोंके स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ४२ ॥

शौर्यं तेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

शूरता, तेज, धैर्य, चतुराई, युद्धमें स्थिर रहना, दानकरने में रुचिका होना, और स्वामित्व अर्थात् सामर्थ्यका होना, क्षत्रियों के यह स्वाभाविक कर्म हैं॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापिस्वभावजम्॥

कृषि (खेती करना), गौओंकी रक्षाकरना, वाणिज्य अर्थात्–व्यापार करना, यह वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं और(उपरोक्त तीनों वर्णोंकी) सेवाकरना यह शूद्रोंका स्वाभाविक कर्म है॥४४॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतःसिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥

हे अर्जुन ! पुरुष जो है अपने २ कर्मोंहीमें तत्पर रहकर उत्तम सिद्धि (अर्थात्–मोक्ष) को प्राप्त होता है, अपने२ कर्मोंमें निरत रहकर जिस प्रकार उत्तमगतिकी प्राप्ति होती है, सो तुम सुनो ॥ ४५ ॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दतिमानवः

जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है, और जिसने इस संपूर्ण संसारको व्याप्त कर रक्खा है, उसी परमेश्वर को मनुष्य अपने कर्मद्वारा पूजन करके उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है॥

श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्

भली प्रकार आचरण करे हुए दूसरों के धर्म से, अपना धर्म थोड़ाभी होसके तो श्रेष्ठ है क्यों-कि-अपने स्वाभाविक कर्मोंके करने से पुरुष पापों का भागी नहीं होता ॥ ४७ ॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भाहि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥

हे अर्जुन ! स्वाभाविक कर्म यदि दोषयुक्त हों तौ भी उनका परित्याग न करे, क्योंकि-सामा-

न्यता से सम्पूर्णही कर्म दोषोंसे इस प्रकार आच्छादित होरहे हैं,जैसे अग्नि धूमसे आच्छादित रहती है ॥ ४८ ॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिंपरमां संन्यासेनाधिगच्छति॥

जिसकी बुद्धि सर्वत्र आसक्त नहीं है ऐसा तथा जितेन्द्रिय, और इच्छारहित पुरुष संन्यास अर्थात्–निष्काम कर्म करके परम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥

सिद्धिं प्राप्तोयथाब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥

हे कुन्तीनन्दन ! इस सिद्धिको प्राप्त हुआ पुरुष जिसप्रकार ब्रह्मको प्राप्त होता है, उस प्रकारका; तथा उस ज्ञानकी उत्तम मर्यादाको मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूं तुम सुनो ॥ ५० ॥

बुद्ध्याविशुद्धया युक्तोधृत्यात्मानं नियम्य च

शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्यच
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरोनित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ५२
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तोब्रह्मभूयाय कल्पते॥

धैर्यके द्वारा अपने मनको रोककर,शब्द,स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन विषयोंको छोड़, राग द्वेषका परित्याग कर, तथा अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और उपभोग इन सबको त्यागकर अत्यन्त शुद्ध बुद्धि करके युक्त, एकान्त स्थानका सेवन करनेवाला, स्वल्पाहारी, वाणी,शरीर और मनको जीतनेवाला, ध्यान (आत्मचिन्तन) तथा योग (आत्मस्वरूपमें चित्तकी एकाग्रतामें तत्पर) एवं नित्य वैराग्यको प्राप्त हुआ,ममतारहित और शान्त ऐसा पुरुष ब्रह्मप्राप्तिके योग्य होता है ॥५१॥
॥ ५२ ॥ ५३ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्५४

ब्रह्ममें स्थित हुआ, प्रसन्नचित्त वाला, पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंमें समानभाव से देखता है, और किसी प्रकारके शोक वा अभिलाषाको नहीं करता तथा मेरी परम भक्तिको प्राप्त होता है॥ ५४ ॥

भक्त्यामामभिजानातियावान्यश्चास्मितत्त्वतः
ततोमां तत्त्वतोज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्५५

तिसके अनन्तर उस भक्तिके प्रभावसे ही मुझको सर्वव्यापी और सच्चिदानन्दस्वरूप तत्त्वसे जानता है, तदनन्तर मुझे तत्त्वसे जानकर मुझसे प्रवेश करता अर्थात् मेराही स्वरूप होजाता है ५५

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणोमद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्५६

निरन्तर संपूर्ण कर्मोंको करता हुआभी मेरी शरणमें आया हुआ पुरुष मेरी कृपा से अवि-

नाशी और अनादि परम पदको प्राप्त होता है५६
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव५७।

हे अर्जुन ! मनसे संपूर्ण कर्मोंको मेरे विषैं अर्पण करके मेरी भक्तिमें तत्पर हो बुद्धिके द्वारा एकाग्रताको प्राप्त होकर सदा मेरे विषैं चित्तको लगाओ ॥५७॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि॥

हे पार्थ ! तुम मेरे विषैं चित्त लगाकर मेरे अनुग्रहसे संपूर्ण दुःखोंके पार होजाओगे, और यदि तुम अहंकार से मेरे वचनोंको नहीं सुनोगे तौ नाशको प्राप्त होजाओगे ॥५८॥

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्यइति मन्यसे ।
मिथ्यैषव्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति

यदि तुम अहंकारको प्राप्त होकर ऐसा मानते हो कि मैं युद्ध नहीं करता, तौ तुम्हारा यह

विचार मिथ्या है, क्योंकि प्रकृति (जातीय-स्वभाव) अवश्य ही युद्धमें प्रवृत्त करेगी ॥ ५९ ॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोपि तत्

हे कुन्तीनन्दन ! तुम जिन कर्मोंको अज्ञानसे करनेकी इच्छा नहीं करते हो, स्वाभाविक कर्मों से बन्धनको प्राप्त हुए तुम उन्हीं कर्म्मोंको परवश होकर करोगे ॥ ६० ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया६१

हे अर्जुन! परमेश्वर अपनी माया करके संपूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित होकर यन्त्रमें बँधी-हुई कठपुतलियों की समान समस्त प्राणियों को भ्रमाते हैं ॥ ६१ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

हे भारत ! तुम सब प्रकार से उन परमेश्वर की शरण में जाओ, और उन्हींकी कृपासे परम शान्ति और नित्य (अचल) स्थानको प्राप्त होओगे।
इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥६३॥
हे अर्जुन ! इसप्रकार मैंने परम गोपनीय ज्ञान तुमसे वर्णन किया, इस सम्पूर्ण (भगवद्गीता रूप परम गोपनीय) ज्ञानको आद्योपान्त विचार कर जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥६३ ॥
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥
हे मित्र ! फिर भी सम्पूर्ण गोपनीयों से भी अतिगोपनीय मेरे परम [श्रेष्ठ] वचनों को सुनो तुम मेरे परम मित्र हो, इस कारण तुम्हारे हितको कहता हूं ॥ ६४ ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यासि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

हे अर्जुन ! तुम चित्त की वृत्तिको मेरे विषे लगाओ, मेरे भक्त होकर मेरी ही पूजा करो, और मुझे ही नमस्कार करो, मैं सत्य कहता हूं कि तुम ऐसा करने से निश्चय मुझे प्राप्त होओगे, क्योंकि—तुम मुझे परम प्रिय हो ॥ ६५ ॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वां सर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामि माशुचः॥

हे अर्जुन ! तुम संपूर्ण धर्म्मोंको त्याग कर केवल मेरी ही शरण में आजाओ, तुम किसी प्रकारका शोक मत करो मैं तुम्हें संपूर्ण पापों से मुक्त करदूंगा ॥ ६६ ॥

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
नचाशुश्रूषवेवाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥

हे अर्जुन ! यह (गीतारूप) ज्ञान तुम्हारे ही अर्थ वर्णन किया है, तपश्चर्याहीन, भक्ति भाव रहित, और जिसकी सुनने की इच्छा नहीं अथवा जो मेरी निन्दा करता हो ऐसे पुरुषों

यह ज्ञान कभी भी कहना न चाहिये ॥ ६७ ॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

जो पुरुष मेरी भक्ति करके इस परम गोपनीय ज्ञानको मेरे भक्तजनों से कहेगा, वहभी निःसन्देह मुझ को प्राप्त होगा ॥ ६८ ॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥

क्योंकि-(गीताशास्त्ररूप) उस ज्ञानोपदेश करने वाले भक्तसे अधिक और कोई मेरा प्रिय करनेवाला मनुष्योंके मध्य में नहीं है और न उसकी समान प्यारा कोई इस लोक में उत्पन्न होगा ॥ ६९ ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं सम्वादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥

जो पुरुष धर्मयुक्त हमारे तुम्हारे इस सम्वाद (गीता) को पढ़ैगा, निःसन्देह वह पुरुष ज्ञानयज्ञ

के द्वारा मेरा पूजन करनेवाला होगा ऐसी मेरी मति है ॥ ७० ॥

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान् प्राप्नुयात्पुण्य-कर्मणाम् ॥ ७१ ॥

श्रद्धायुक्त जो पुरुष दोषदृष्टिको छोड़कर इस गीताशास्त्रका केवल श्रवणही करेगा वह भी समस्त पापों से मुक्त होकर पुण्यात्मा पुरुषोंके उत्तम लोकोंको प्राप्त होगा ॥ ७१ ॥

कच्चिदेतत् श्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानजं मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥ ७२ ॥

हे पार्थ ! तुमने हमारे कहेहुए इस ज्ञान को एकाग्रचित्तसे सुना या नहीं ? और हे धनञ्जय ! तुम्हारा अज्ञानजनित मोह नाशको प्राप्त होगया या नहीं ? ॥ ७२ ॥

अर्जुनउवाच ।

नष्टोमोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मया-

च्युत । स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

अर्जुनने कहा कि-

हे अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट होगया, और आत्मज्ञानरूप स्मृति प्राप्त हुई, मेरे सम्पूर्ण सन्देह दूर होगये और मैं निश्चल हूं (अर्थात्-आपके उपदेश किये हुए ज्ञान से चलायमान नहीं होसक्ता). और जो वचन आपने कहे हैं उन्हें करूंगा ॥ ७३ ॥

सञ्जयउवाच ।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
सम्वादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ७४

सञ्जय बोले कि-

हे राजन् ! (धृतराष्ट्र !) इस प्रकार शरीर को रोमाञ्चित करनेवाले महाभाग श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुनके परम अद्भुत सम्वाद को मैंने सुना ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानिमं गुह्यतमं परम् ।
योगं योगेश्वरात् कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५ ॥

श्रीव्यासजीकी कृपासे मैंने इस परमगोपनीय ज्ञानको योगेश्वर साक्षात् श्रीकृष्णभगवान्के मुख से सुना ॥ ७५ ॥

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य सम्वादमिममद्भुतम्
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ७६

हे महाराज ! श्रीकृष्ण और अर्जुनके परम पवित्र और अद्भुत इस सम्वादको स्मरण करके मैं वारम्वार अत्यन्त प्रसन्न होता हूं ॥ ७६ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

और हे राजन् ! श्रीकृष्ण के उस विश्वरूपका जितनी वार स्मरण होता है तब तबही मुझको

बार बार आश्चर्य होता है, तथा परमानन्दको प्राप्त होता हूं ॥ ७७ ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णोयत्र पार्थोधनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥७८॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगोनामा-
ष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

हे राजाधिराज ! जहां योगिराज श्रीकृष्ण विद्यमान हैं और जहां गाण्डीवधनुषधारी अर्जुन हैं तहां ही राज्यलक्ष्मी, विजय, ऐश्वर्य और निश्चल नीति है ऐसा मेरा निश्चय है ॥ ७८ ॥

इतिश्रीमुरादाबादनिवासिवेदशास्त्रसम्पन्नश्रीज्वालानाथ-
शास्त्रितनूत्पन्नजरत्नभट्टाचार्यकृतौ रत्नप्रभाभि-
धानायां भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ गीताशास्त्रं समासम् ॥

श्रीः ।

विक्रयार्थ पुस्तकें

श्रीमद्भागवत ।

सान्वयाङ्क, विस्तारके साथ भाषाटीका, टिप्पणी, माहात्म्य, चित्र और सूचीसहित अत्युत्तम दो जिल्दोंमें । पृष्ठसंख्या २१७६ मूल्य ५) रु०, डाकव्यय १)

श्री१०८स्वामिशङ्कराचार्यरचित

प्रबोधसुधाकर

वेदान्तग्रन्थ ।

मूल और भाषानुवादसहित, यह ग्रन्थ अभी तक कहीं नहीं छपा, इसके देखने से विद्वान्से लेकर भाषामात्र पढ़े गृहस्थियों पर्यन्तका बहुत उपकार होगा. कपड़ेकी जिल्दका मूल्य ॥) पुढे की जिल्द ।~) डाकव्ययसहित ।

❀योगवासिष्ठसार❀

भाषाटीकासहित।

यह भी वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ है, इसमें वेदान्तविद्या के साधनोंका भलीभांति वर्णन किया गया है। स्थूलाक्षर, उत्तम सुनहरी गुटकाकार जिल्दबंधीका मूल्य ॥) डा० पृथक् ।

आत्मरामायण ।

श्री १०८स्वामिशङ्करानन्दप्रणीत ।

भगवद्भक्तो ! यह वेदान्तविषयकी अद्भुत पुस्तक तयार है। भगवान्की भक्ति, आत्मज्ञान का साधन और रामायणकी सम्पूर्ण लीलाओं का वर्णन देखना है तो इसे अवश्य देखिये। सुन्दर सुनहरी गुटकाकार जिल्दबंधीका मूल्य ॥-) डाकव्यय पृथक् ।

विज्ञाननाटक ।

श्री १०८स्वामिशङ्करानन्दप्रणीत ।

यह भी वेदान्तका अपूर्व पुस्तक है, प्रशंसा करना व्यर्थ है, पुस्तक देखने से ही विदित होगा सुन्दर सुनहरी गुटकाकार जिल्द बंधीका मूल्य ||) डा० पृथक् ।

वेदान्तस्तोत्रसंग्रह ।

इसमें वेदान्तके उत्तम २ बत्तीस ३२ स्तोत्रों-का संग्रह है । स्थूलाक्षरों में पुष्ट कागजपर छपा है । उत्तम रेशमी जिल्द बंधी है, मूल्य||)डा॰ =)

अनुभवानन्दलहरी ।

श्री १०८स्वामिकेशवानन्दकृत ।

अन्वय, पदार्थ और भाषाटीकासहित । यद्यपि आपने वेदान्तके अनेकों ग्रन्थ देखे होंगे, परन्तु यह ग्रन्थ आजतक कहीं नहीं छपा । मूल्य =)

श्रीगोपालसहस्रनाम स्तोत्र

भाषाटीकासहित ।

जो भगवद्भक्त मूलमात्र पाठकर अर्थोंका आनन्द नहीं प्राप्त करसकते उन्हींकी सुगमताके लिये यह पदार्थ भाषाटीका सहित उत्तमता से छापा है, इसका टीका ऐसा उत्तम है कि जिससे सर्वसाधारण लाभ उठासकें। और दूसरा लाभ यह है कि श्रीगोपालजी महाराजका अत्युत्तम रंगीनचित्र भी प्रथम लगा है, तथा उत्तम सुनहरी जिल्द बँधीहुई है मूल्य ।=) डाकव्यय पृथक् ।

अर्जुनगीता ।

जिसमें कलिमलग्रसित मनुष्योंके हितार्थ नाना प्रकारके गृहस्थधर्म सम्बंधी, कर्म अर्जुन प्रति आनन्दकन्द, परब्रह्म साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान्ने वर्णन किये हैं, मूल्य =)॥

नारायणीय ।

(श्रीमद्भागवतार्थसारसंग्रह)

महाकवीश्वर श्रीमन्नारायणभट्ट निर्मित ।

यदि आपको संस्कृतकी अनुपम भक्तिरसपूर्ण कविता का आनन्द लेना है और सम्पूर्ण १२स्कंध श्रीमद्भागवत का सार अपूर्व२छन्दों में देखना है तो इसे अवश्य देखिये । यह पुस्तक अभी तक कहीं नहीं छपी, इसे हमने अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त कर छपाया है । ग्रन्थ २००० श्लोक के अनुमान है, तिसपर भी मूल्य केवल ॥) मात्र है ॥

पुस्तकें मिलनेका पता—

गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण

अध्यक्ष—लक्ष्मीनारायण यन्त्रालय

मुरादाबाद.